# अभिव्यक्ति की रंजना

( आलेख संग्रह )




डॉ. शुभदा पांडेय

प्रकाशन

काव्यांजलि प्रकाशन
पता : ई– 335, पार्श्वनाथ अपार्टमेन्ट
नान्ता, कोटा (राज.) 324008

**KAVYANJALI PUBLICATION**
Add. E - 335 , Parshwanath Apartment,
Nanta, Kota (Rajasthan) 324008

सम्पर्क सूत्र : 9057558170
ई–मेल : naveengautam9829@gmail.com

मुद्रक – चम्बल ग्राफिक्स & प्रिन्टर्स – डकनिया स्टेशन रोड़,
कोटा (राजस्थान) 324005

Printers : Chambal Graphics & Printers, Dakaniya Station Road, Kota (Raj.)-324005

ISBN - 978-81-988738-6-6

© Dr. Shubhada Pandey
सर्वाधिकार सुरक्षित – © डॉ. शुभदा पांडेय

प्रथम संस्करण – 2025
मूल्य – रू. 180/–

Title - **Abhivyakti Ki Ranjana** (Aalekha Sangrah)
Writter - Dr. Shubhada Pandey
Price - Rs. 180/-

# अभिव्यक्ति का मौलिक कर्तव्य ही उसकी रंजना है

अभिव्यक्ति एक मनोवैज्ञानिक दशा है , जिसमें हमारे संचित अनुभवों का सुकथ्य होता है। जिसका उपयोग हर किसी के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना जीवन के लिए धूप। नहीं कह पाने की वेदना टीसती है, पर यह अभिव्यक्ति अधिकार के साथ बहुत कुछ अनुशासन भी सिखाती है। अनेक बार समर्थित दृष्टांत भी अभिव्यक्ति का सत्यापन करते हैं। सत्यं, शिवं, सुंदरम् ही इसका हेतु हो सकता है। वही वरेण्य और उत्कृष्ट योगदान होगा। कुछ कहते हुए आदमी की संचेतना जब तक लोकोन्मुखी नहीं होती, उसे परिपक्व नहीं माना जा सकता। परिपक्वता के लिए सहजता, समय और धैर्य की त्रिवेणी का तट होना अनिवार्य है। यही अभिव्यक्ति की रंजना है, जिससे आदमी बहिर्मुखी होकर अंर्तमुखी संवेगात्मकता को संतुष्टि प्रदान करता है।

साहित्यिक भावनाओं के काव्य– पुष्पों से जिस तरह परिसर सुगंधित और आकर्षक होता है, ठीक उसी तरह उच्च, सुदृढ़, सीधी, चौड़ी कलात्मक दीवारों से भवन सुरक्षित व अनुष्ठानिक बनता है, ये दीवारें ही साहित्य का गद्य पक्ष हैं। जिसकी आवश्यकता बार–बार, हर बार पड़ती है। गद्य की लोकप्रियता अधिक है। यह पठनीय, सुगम्य और सहज अनुग्रहणीय होता है।

अनुभवों की हर बात कवित्त में कही भी नहीं जा सकती, जीवनी, विवरण, यात्रा वृतांत, सूचना, विश्लेषण, शोधिक परिच्छेद, विवेचना, शैक्षिक सिद्धांत आदि बहुत से प्रसंग हैं, जिनमें गद्य आगे बढ़ कर आता है।

मेरे ये आलेख समय – समय पर लिखे गए हैं, जिनमें मेरे चिंतन , परिवेश, अनुभव, आदि को शामिल पाया जा सकता है। असम की कर्मस्थली ने वहाँ की संस्कृति पर लिखने को विवश किया। सुदूर पूरब को दुनिया के लिए उजागर करना मेरा लक्ष्य था, जिसे वहाँ की कलात्मक सौंदर्य और भाव बोध के साथ आपके समक्ष लाने का प्रयास किया है।

पावापुरी तीर्थधाम मेरे यात्री मन की पोषक अवधारणा का वृतांत है, जहाँ की यादों से आज भी अभिभूत हूँ।

00000 00

कबीर के उठाए प्रश्न समाज की शाश्वत धारा की उत्तरापेक्षी तट हैं, जिनसे विलग नहीं हुआ जा सकता। उनकी सजग शैली कभी धूमिल हो ही नहीं सकती।

काशी के स्मृतिशेष यशस्वी लेखक के काव्य का विवेचना उनका सम्यक साक्षात्कार करने जैसा है, सक्षम आदमी जितना सरल हो सकता है , उसकी लेखनी की प्राणवत्ता उतनी ही दीर्घायु होगी।

पुरी महोत्सव जिसने नहीं देखा, वह देखने के लिए उत्प्रेरित हो, भारत को समझने के लिए हर दिशा की संवेदनशीलता को अपनाना होगा। भगवान को भी बुखार आता है, वे भी मौसी के घर जाते हैं, वे गर्भगृह से भ्रमण के लिए निकलते हैं, ये सब आपके लिए ही संजोया गया है।

नदियों से मेरा लगाव है उसे कह पाना कठिन है, कभी– कभी मैं नदी का अस्तित्व भीतर अनुभूत करती हूँ, आज नदियों की दयनीय दशा से हम सभी परिचित, चिंतित और संकुचित हैं। यह आलेख नदियों की वृहद आत्मकत्य है, जिसमें अन्य कवियों की पुष्टि भी समाई हैं।

राम भारत के आत्मपुरुष हैं, जिनका अध्याय इस देश के हर संचेतना में समाहित है। यह सत्य हमने ही नहीं विश्व की हर सभ्यता ने स्वीकार किया है। वैश्विक सुखद संयोग ही है कि इस बीच हमारा वर्षो से संघर्षित और संकल्पित राम मंदिर भी महाभव्य स्वरूप में बन कर तैयार हुआ है। दुनिया देख रही है और रोमांचित है, ऐसे में रघुवंश की वंशावली को जानना, उनके त्याग, समर्पण, चक्रवर्ती होने के लक्षणों पर दृष्टिपात करते हुए, लेखनी उपस्थित है।

दिनकर को भी अक्सर ही याद किया जाता है, आधुनिक भारत को पौराणिक पात्रों से संबद्ध कर , वर्तमान समस्याओं के समाधान करने हेतु प्रसंगवश उन्हें याद करना– भारतीयता को संजीवनी देने वाले दिनकर जी को समेटने की कोशिश की हूँ।

अन्य आलेख भी पढ़िए और उनकी अनुकूलता से लाभान्वित हो सकिए, यही अभिव्यक्ति की रंजना का हेतु है।

**डॉ शुभदा पांडेय**

00000 00

## मेरी 35 पुस्तकों की सूची

1. स्मृति
2. सरकंडे के फूल
3. इंदुपरी का पत्र
4. दूध में पानी मटर में पानी
5. नन्हें– मुन्नों की कहानियाँ
6. मां कह एक कहानी
7. श्री हनुमत स्तुति
8. को नहिं जानत है जग में
9. अँसुवन जल सींच– सींच
10. पर्यावरण से करें प्यार
11. रंगों के गीत हैं फड़
12. वीर शहीद शंभूधन फुंगलो
13. उत्तर बन गई नदी
14. तजिए मद व्यवहार
15. सत्तर के दशक तक
16. नैतिक शिक्षा के विविध आयाम
17. भारतीय श्रृषि परंपरा और शैक्षिक दर्शन
18. मेरी शिल्पकार हैं रचनाऐं
19. आदित्य हृदय स्त्रोत का हिंदी भावानुवाद
20. प्रणम्य लेखनी के अक्षर पुरुष– सांवरमल सांगानेरिया
21. स्वर्णमृगी आंखों के सपने
22. अनुभूतियों के शब्द
23. पन्नाई यादों के कल्पतरुः भूटान
24. मां कह एक कहानी (तमिल अनुवाद)
25. मेले की सैर
26. आओ सीखें खेल– खेल में
27. गंगा से अन्तर्गगा तक
28. संवेदना के स्पंदन
29. बगुला– बगुला धान दे
30. पक्षी लोक
31. महाकुंभ के माणिक मृग मन
32. अभिनंदन कृति
33. अभिव्यक्ति की रंजना
34. नमन नमन जय सदा नमन है
35. 'सरहद से' का भोजपुरी अनुवाद

**डॉ शुभदा पांडेय**
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)

## अनुक्रमणिका


| क्र.सं. | रचना | पृ.सं. |
|---|---|---|
| 1. | महर्षि अरविंद की शैक्षिक विचारधारा की वर्तमान प्रासंगिकता | 7 |
| 2. | सदी पुरूष के साहित्यिक अनुष्ठानों में नैतिक बोध | 13 |
| 3. | कबीर को सोचते हुए | 20 |
| 4. | श्री पावापुरी तीर्थ –जीव मैत्री धाम (यात्रा वृतान्त) | 23 |
| 5. | हिन्दी का विश्व और विश्व में हिन्दी | 27 |
| 6. | भारतीय लोक संस्कृति और नाथ संप्रदाय | 32 |
| 7. | प्रभु श्री राम की अलौकिक वंशगाथा | 37 |
| 8. | भूखी – प्यासी माटी का दर्द | 44 |
| 9. | राजभाषा हिंदी की चुनौतियां | 49 |
| 10. | दिनकर को याद करते हुए | 54 |
| 11. | असमिया लोकगीत बिहू में मानवीय संवेदना | 58 |
| 12. | असम की लोककथाओं में मानवीय मूल्य | 63 |
| 13. | वर्तमान साहित्य में नदी | 68 |
| 14. | बांस वनों में झूमर नृत्य | 76 |
| 15. | पुरी महोत्सव रथयात्रा के साक्षी | 79 |
| 16. | डा. राजेंद्र की रचनाएं शास्त्रीय और देशज भी | 83 |
| 17. | रामचरितमानस में गुरू – संस्कार | 89 |
| 18. | पुस्तक चर्चा | 94 |
| 19. | नैसर्गिक सौंदर्य की अलौकिकआभा का दर्पण पन्नाई यादों का कल्पतरू : भूटान | 96 |
| 20. | जो किसी से भेद न करें, सबको एक आंख से देखें वहीं गंगा है | 99 |

# महर्षि अरविंद की शैक्षिक विचारधारा की वर्तमान प्रासंगिकता

भारत देश अनादिकाल से श्रृषि– मुनियों का देश रहा है। समय–समय पर देवतुल्य व्यक्तित्व यहाँ जन्म लेते रहते हैं, और यहाँ की संस्कृति को पल्लवित– पुष्पित करते रहते हैं। उन्हीं में से एक बड़ा नाम ऋषि अरविंद का है। इनका जन्म कोलकाता शहर में 15 अगस्त 1872 को हुआ था, इनके माता– पिता का नाम डॉ कृष्णधन घोष एवं श्रीमती स्वर्णलता देवी था।प्रारंभिक शिक्षा दार्जिलिंग में लेने के बाद अध्ययन के लिए इंग्लैंड भेजे गए।1885 ई में लंदन के सेंट पॉल स्कूल में अध्ययन के बाद पिता के साथ आस्ट्रेलिया चले गए। जहां उन्होंने ग्रीक, लैटिन, इंग्लिश और फ्रेंच में प्रवीणता हासिल की। सन् 1893 ई में 14 वर्ष बाद भारत वापस आकर विभिन्न सेवाओं में रहकर बड़ौदा कालेज में अध्यापक बने और संस्कृत साहित्य एवं बंगला का अध्ययन किया। सन् 1901 में विवाह हुआ। सन् 1909 में कर्मयोगिन नामक साप्ताहिक पत्र प्रारंभ किया।

वे कांग्रेस के गर्म दल के नेता बने। सन् 1903 में ही वह स्वामी ब्रह्मानंद से भेंट कर आध्यात्मिक साधना के मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए। 1907 में विष्णु भास्कर लेले नामक मराठी योगी भेंट ने उनकी यात्रा को आध्यात्मिक ज्ञान को बल प्रदान किया।1910 से 1917 तक इन्होंने कठिन साधना की।सन् 1966 में राष्ट्रीय विद्यालय कोलकाता के प्राचार्य बने और 'वंदेमातरम' पत्र का संपादन किए। सन् 1907 एवं 1908 में जेल गए। 4 अप्रैल सन् 1910 को पांडिचेरी पहुंच कर ध्यान योग की ओर मुड़े। 1914 में आर्य नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया। सन् 1926 में पांडिचेरी में अरविंद आश्रम की स्थापना किए। 24 नवंबर सन् 1926 को उन्हें ज्ञान की अनुभूति हुई। इसी मध्य फ्रांसिसी महिला मीरा रिचार्ड ने इनसे प्रभावित होकर ,आश्रम को अपना बहुमूल्य सहयोग दिया और स्वंय बाद में आश्रम में रह कर ही मां के रूप में प्रसिद्धि पाई। इस तरह आध्यात्मिक सेवा करते हुए वे 1950 में महासमाधि में लीन हो गए। उन्हें चैत्यपुरूष के नाम से जाना जाता है।योग, आश्रम और साहित्य– सेवा

ये तीनों उनके दर्शन के अंग थे। उनकी पुस्तकें साहित्याध्यात्म और दिव्य जीवन, समाज के लिए जड़ी साबित हुई।

सबसे पहले उन्होंने 'जगत मित्या' का फार्मूले को नकारा और इस बात पर जोर दिया कि जब हम परम पुरूष की संतान हैं तो, हम मित्या कैसे हो सकते हैं। स्थूल से सूक्ष्म की ओर गति ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

उनका जीवन– दर्शन आध्यात्मिक चेतना के श्रोत हमारे पौराणिक ग्रंथ थे, जिसे उन्होंने साधना के द्वारा आत्मसाध किया। अनुभूतियों के इन बहुमूल्य विचारों को ,जन कल्याण हेतु वे प्रचार– प्रसार किए। ये दार्शनिक तत्व उपनिषदों से प्रभासित हैं। उन्होंने मानवता, विश्वात्मा एवं परमात्मा तीनों को ही परम सत्य माना है। वह मानते हैं कि जीवन में आध्यात्मिक उत्कर्ष पाने के लिए योग आवश्यक है। इसी से दिव्य जीवन की अनुभूति की जा सकती है। दिव्य जीवन में प्रेम , सहानुभूति एवं प्रत्यक्ष पूर्णता का ज्ञान काम करता है। इन तीनों को योग के द्वारा ही, फलीभूत किया जा सकता है।

श्री अरविंद की विचारधारा का मूल वेद और गीता है, जिसका वे केवल अध्ययन ही नहीं किए, बल्कि साधना से प्रत्यक्ष कर सके। इसे जीवन में अवतरित कर , जिन ऊर्जाओं की अनुभूति वे कर सके, उन्हें मौलिक रूप में लोगों तक स्थापित किए। उनका दर्शन समन्वय मूलक है, जिसमें भक्ति और कर्म का समन्वय मिलता है। और दूसरी ओर निर्गुण और सगुण का भी आनंद लेने की तथ्यात्मक बातें उनके दर्शन में हैं। द्वैत और अद्वैत के समन्वय के साथ जड़वाद तथा अध्यात्मवाद के समन्वय को भी पूर्ण समन्वय से अभिव्यंजित किया गया है। समय के साथ वे विज्ञान और आध्यात्म को भी जोड़ना चाहते हैं। भौतिक जगत की नश्वरता को मानते हुए भी इसे त्यागने की विचारधारा से विरोधी हैं। उनका मानना है कि भौतिक जगत भी न केवल ईश्वर का आवास है , वरन् यह स्वंय ब्रह्म भी है। श्री अरविंद यथार्थवादी विचारक हैं, जिसमें योग द्वारा जीवन का परिमार्जन चाहते हैं।

इनका योग सिद्धांत दो हिस्सों में बंटा हुआ है। एक ओर तो वह



भारतीय परंपरा के सनातन लक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति एवं सत्य के साक्षात्कार को व्यक्ति की साधना का लक्ष्य मानते हैं। किंतु दूसरी ओर वह दिव्य प्रकाश के द्वारा जड़, जगत, शरीर, प्राण तथा मन को रूपांतरण का लक्ष्य मानते हैं। असल में इनका योग सत्य साक्षात्कार एवं रूपान्तर की प्रयोगशाला है। इस साधना में भोजन, व्यायाम, विश्राम आदि के निश्चित नियम हैं। ब्रह्मचर्य एवं मादक पदार्थों के सेवन पर पूर्णतः प्रतिबंध है। ध्यान, प्रार्थना, स्वाध्याय, और जप पर विशेष ध्यान दिया गया है। इनकी साधना का मूल समर्पण भाव है। ईश्वर के हाथों में सौंपना और निश्चिंत हो जाना है। उनका स्वप्न रामराज्य की स्थापना एवं मनुष्य को विकाररहित कष्टहीन जीवन का लक्ष्य बनाना था।

सामाजिक कार्यों और विकास को वे चार भागों में बांटते हैं.... युग, प्रकारात्मक युग, रूढिवादी युग, व्यक्तिवादी युग । इसमें वे श्रेष्ठ यह मानते हैं कि सच्चे आत्मनिष्ठ व्यक्तिवाद की स्थापना होनी चाहिए।

शिक्षा दर्शन के अंतर्गत वे अंतःकरण को आधार मानकर उसके चार तत्व निर्धारित करते हैं।

1– चित्त

2– मानस

3– बुद्धि

4– सत्य के प्रत्यक्षीकरण की शक्ति।

चित्त अन्य तीनों पटलों का आधार है। मानस या मष्तिष्क का कार्य ज्ञानेद्रियों द्वारा अनुभवों को ग्रहण करना है। इसी से विचारों का निर्माण होता है। बुद्धि ज्ञान को व्यवस्थित करती है। बुद्धि में ही रचनात्मक, विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक शक्तियाँ निहित हैं। सत्य से ज्ञान का प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

**शिक्षा के उद्देश्य :**

1– अन्तःकरण का विकास करना

2– बालक की सुषुप्त शक्तियों को जागृत करना

3– प्रकृति की सर्वोत्तम शक्ति को विकसित करना।

4– अंतर्निहित सृजन शक्तियों का विकास करना।

5– शिक्षा में राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करना। राष्ट्र की आत्मा और मानव की आत्मा को जोड़ने की एक सार्वभौमिक शक्ति के रूप में शिक्षा का विकास करना।

6– शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वह बुद्धि, चेतना, भावना व संकल्पना को समान रुप से विकसित करे।

7– प्रकृति से सामंजस्य को विविध विषयों में स्थापित करना।

8– सौंदर्य को समुचित महत्व के साथ शिक्षा को पोषित करना।

9– सत्यं, शिवं और सुंदरम् का समन्वयन आवश्यक है।

10– स्नायु शुद्धि, विवेक शुद्धि, चित्त शुद्धि पर आधारित प्राणतत्व का विकास शिक्षा के द्वारा सम्पन्न करना।

**पाठ्यक्रम :**

महर्षि अरविंद ने मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा पर बल दिया। साथ ही किसी एक अंतरराष्ट्रीय भाषा के ज्ञान को भी आवश्यक ठहराया। पाठ्यक्रम में निम्न विषयों को शामिल करने का समर्थन उन्होंने किया–

(1) काव्य–– इससे व्यक्तित्व में संवेगों का उन्नयन होता है।

(2) कला–– यह संवेगों में सामंजस्य बनाती है।

(3) संगीत––– यह व्यक्ति को संवेगों की गहराई तक ले जाता है।

(4) विज्ञान–– इससे अन्वेषण, विश्लेषण एवं विवेचन की प्रज्ञा का विकास होता है।

(5) भाषा–– इससे शब्दों व विचारों पर ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया जाता है।

(6) नैतिक शिक्षा–– इसके अंतर्गत वे अंतःकरण में संचित समस्त



दिव्य मानवीय गुणों के विकास पर जोर देते हैं।

(7) धार्मिक शिक्षा– आत्मा और प्रकृति के मध्य धर्म सेतु का कार्य करता है।

(8) शारीरिक शिक्षा– कहा जाता है कि शरीर ही सभी क्रियाकलापों का माध्यम है, अतः इसका सुदृढ़ होना ही, अन्य सभी गुणों की स्थापना का जिम्मा लेता है।

(9) राष्ट्रीय साहित्य और इतिहास– इसके बिना वह देश के प्रति अपना राष्ट्रीय दायित्व सही से नहीं निभा सकते।

**शिक्षक का दायित्व :–**

1– विद्यार्थी को ज्ञान के लिए प्रेरित करना और ज्ञानेन्द्रिय को विकसित करना। समस्त तरह के बौ(िक विकास के लिए, नाड़ी तंत्र का परिशोधन अनिवार्य है, जो प्राणायाम और ब्रह्मचर्य से पाया जा सकता है।

2– संवेगों को अनुशासित व नियंत्रित करने का प्रशिक्षण।

3 – हर तरह की स्थितियों में विद्यार्थी को इंद्रिय निग्रह से व्यवहार करना।

4 – नैतिकता का विकास आवश्यक है, इसके बिना वह किसी भी गुण को संजो कर नहीं रख सकता।

5 – ध्यान व एकाग्रता का अभ्यास।

6 – निरीक्षण व चिंतन का विकास।

7 – निर्णय लेने की क्षमता का विकास। इसके बिना जीवन में कोई सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती।

8 – तर्क शक्ति भी हमारे बौ(िक चातुर्य का वहन करती है।

छात्रों के लिए उन्होंने गुरू और विद्या के प्रति श्रद्धा को अनिवार्य माना है। सादा जीवन, सादा भोजन, सद्भाव, आध्यात्मिकता का समावेश आदि होना ही चाहिए। यौगिक अनुशासित जीवन ही सफल होता है। चित्त

शुद्धि और चित्त शांति के बिना सकारात्मक सोच विकसित नहीं की जा सकती, ऐसा उनका मानना था।

अरविंद ने अपनी पूरी शिक्षा प्रणाली में अनुशासन पर बहुत जोर दिया है। व्यवहार को संतुलित रखने के लिए संवेगों पर नियंत्रण आवश्यक है। अविवेकी पुरूषों का अपने संवेगों पर नियंत्रण नहीं रहता है, क्षण भर में आग बबूला होकर , अनिष्ट कर बैठते हैं, या शीघ्र ही अवसाद से घिर कर, अनेक अनुचित कार्यवाई कर डालते हैं। षडविकारों का प्रकोप उन पर जल्द ही हाबी हो जाता है। इसे आत्मसंयम से दूर किया जा सकता है। और इसके लिए आत्मानुशासन चाहिए।

छात्रों को उनके रूचि के विषय पढ़ाए जाए, ऐसा उनका आग्रह था। शिक्षा में प्रयोग विधि उत्तम है, जिसे देख कर छात्र शीघ्र लाभान्वित होगा। केवल शाब्दिक शिक्षा गूढ़ और अरसिक होती है। संसाधनों की कमी नहीं होनी चाहिए।

यद्यपि महर्षि अरविंद आध्यात्मिक गुरू थे, भारतीय वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ के रूप में उनकी गणना, श्रेष्ठ आचार्यो में की जाती है। किंतु परस्पर मानवीय प्रेम को विकसित करने के लिए, उन्होंने शिक्षा दर्शन को भी पुष्ट किया। वे वैश्विक संस्कृतियों के समागम पर जोर देते थे। विश्व शांति और उन्नयन में अरविंद की मौलिक शैक्षिक चिंतन आज भी प्रासंगिक है।



# सदी पुरूष के साहित्यिक अनुष्ठानों में नैतिक बोध

सदी साहित्यकार आदरणीय रामदरस मिश्र हिंदी जगत वह विशाल वट– वृक्ष हैं , जिसने दशकों तक अडिग अचल अविकल गुरूत्व के साथ अपनी प्रभुता को सजीव बनाए रखा। शिक्षक और लेखक अपने भीतर के दोनों व्यक्तित्वों को इस तरह से सामांतर और सहयोगी बनाए रखा कि वे पर्याय भी बने और पृथक भी रहे।

उन्होंने धरती की सकारात्मक ऊर्जा को जिया और पढ़ा। जड़ से जुड़े रहने की उनकी कला ने उनकी रचनाओं को स्वाभाविक जीवंतता दी। उनकी दृष्टि में सृष्टि की अनुभूति बस एक सूर्य की तरह सतत चलते रहने का पर्याय है , जिनको किसी अवरोध पर रूकना स्वीकार नहीं, इसलिए वे चुनौतियों को सहज और नियमन की तरह लेते हुए कलम थामे रहे।

हिंदी को लेकर साधना की तरह उनकी भावना ही उनके सृजनात्मक– संसार का विस्तार है, जो जिया वो लिखा। मधुरता और मलमलता को कभी रूक्ष नहीं होने दिए। जीवन को उसके अर्थो में नहीं ,बल्कि अपने अर्थो में बांचने की उनकी शैली ने उन्हें धरोहर बना दिया। उन्होंने न केवल चित्र बनाए बल्कि विद्रूप चित्रों को भी सुखद आकार देकर मनोरम रंगों से संवारा। उनके सहज शब्द, सरल शैली, सरस स्तरीयता ने उनके साहित्यकार को परिपक्वता का प्रतिमान बनाया।

भावनाओं के अंकुर जब, जहां , जैसे चाहें प्रस्फुटित होते रहे। गद्य या पद्य उनकी कलम– काया नदी विस्तार के दो किनारे हैं। सतत लेखन सोच के प्रवाह को अवनि से अनंत तक जोड़ती हैं। सतत लिखते रहने वाले इस मनीषी ने साहित्य– संसार को इतना मूल्यवान बना दिया है कि पीढ़ियां सदियाँ इसे सहेजती रहेंगी। यह सब कुछ तभी संभव हो पाया जब उनके आखर ने अपनी नैतिकता हमेशा जड़ों की तरह भूअंश बनाए रखा।

डॉ मिश्र ने कवि कर्म को श्रेष्ठ माना क्यों कि इसमें व्यक्ति देशज रहता है, उस पर कोई कलई नहीं होती। वह जड़ों की ओर अपनी रूझान रखता हुआ अपनी मौलिकता की मिट्टी से विलग नहीं करता है। कवि ने सच की व्यवहारिकता में गंगा का बहाव देखा है। यह पावनता और गतिशीलता का द्योतक तो है ही, साथ ही सभ्यता के अनेक वंशजों का पीढ़ी दर पीढ़ी पोषक भी। वे अपनी कविता आलोचना में लिखते हैं–

**जब वह गांव से आया**
**तब वह कवि था**
**उसके शरीर में खेतों की चमक थी**
**और मन में मिट्टी की खुश्बू**
**वह सही देखता था**
**सही कहता था**
**वह खुल कर हंसता था**
**और गंगा के पानी में घंटों बहता था।**
**धीरे– धीरे उसमें से गांव झड़ने लगा**
**वह गंगा की जगह**
**बंद बाथरूम में नहाने लगा**
**और नहाते– नहाते योजनाएं बनाने लगा**
**'कब किस पर कितना कीचड़ उछाला जाए?'**

यह कविता मानव के शहरीकरण की उस व्यवस्था और व्यथा को व्यक्त करता है ,जो धड़विहीन केतु की तरह केवल अनर्थ कर पाने भर की सोच रख पाता है। उसकी कूपमुखी सोच उसे बहाव और विस्तार से रोक कर बहते हुए से स्थिर बनाती है। धवल से कलुष का परिवर्तन होता है। असीम से सीमित, प्राकृतिक से अप्राकृतिक होते जाना उसकी नियत बन जाती है। वह कवि न रह कर आलोचक बन जाता है।

बौद्धिकता को नष्ट करने वाली सोच किसी चूहे की तरह होती है। जो खाने– पीने वाली चीजों के अतिरिक्त उन कागजों का दुश्मन बन जाता है, जो जड़ता को हरने के उपायों को प्रमाणित करती हैं। लेखक के भीतर जो आग है, वह उन सभी कुतरनी वृत्ति के लिए है जो किताबों के



मर्म नहीं समझ कर, उसे हानि पहुंचाने को आतुर रहते हैं। 'चूहे' कविता में कवि लिखते हैं–

**सावधान!**
**चूहे फिर उतरा रहे हैं सड़क पर**
**जल्दी ही घरों में प्रवेश करेंगे**
**अपनी– अपनी किताबें संभाल लो**
**ये गोदाम या तिजोरी नहीं काटते**
**केवल किताबें काटते हैं**
**क्यों कि उनमें इनसे बचने**
**या मारने के उपाय लिखे होते हैं।**

डॉ मिश्र ने प्रकृति को बहुकोणीय विस्तार दिया और साधा है। उसका कारण उनके बचपन का गवई परिवेश है, जिसे वे सदा जीते रहे। शहर व्यक्ति की व्यवहारिक आवश्यकता हो सकती है, आत्मीय नहीं। वे पल भर को अपनी सोच में कृत्रिमता का समावेश नहीं चाहते ।इससे उनकी बौद्धिक वितान में खलल की संभावना लगती है। वे बसंत पर रचना लिखते हुए उन सभी लोहाधर्मी घरों को चुनौती देते हैं। एक ओर उनका प्रकृतिलसित मन बोलता है तो, दूसरी ओर संसाधनों से विलग होती उनकी सोच आधुनिकता को दरकिनार करती सामने आती है। प्रकृति स्वामिनी है कोई चेरी नहीं ,जो हमारा कहा करे। उसे पाने के लिए हमें उसके पास जाना होगा।

'बाहर तो बसंत आ गया है' कविता की बानगी देखिए–

**बंद कमरों में बैठकर**
**कब तक प्रतीक्षा करोगे बसंत की**
**सुनो**
**बसंत लोहे के बंद दरवाजों पर हांक नहीं देता**
**वह शीशे की बंद खिड़कियों के भीतर नहीं झांकता**
**वह सजी हुई सुविधाओं की महफिल में**
**आहिस्ता– आहिस्ता आने वाला राजपुरूष नहीं है**
**और न वह रेकॉर्ड है**

**जो तुम्हारे हाथ के इशारे पर**
**तुम्हारे सिरहाने बैठकर गा उठेगा।**

हॉक लगाना भोजपुरी की क्रिया है, जिसका अर्थ आवाज देना होता है, इससे इस रचना का अभिव्यंजित सौंदर्य और भी बढ़ जाता है। आंचलिक शब्द कहीं बहुत सटीक गुणात्मकता बढ़ाते हैं।

दुनिया में अनेक तरह के जीव होते हैं, सभी की अपनी– अपनी सोच, समझौतावादी दष्टिकोण, लचरपन, विवसता, और लाचारी होती है। कुछ दुम हिलाने वाले तो कुछ उपभोक्तावादी। इन सारे परिदृश्यों को बहुत सजीवता और खूबसूरती से कवि चित्रित करते हैं – एक चिड़ियाघर में ले जाकर। कविता का शीर्षक भी 'चिड़ियाघर' ही है।

**भालू हाथ जोड़कर मूंगफली मांगता रहा**
**पाने पर एक लंबा सा सलाम दागता रहा**
**बंदर उछलते– कूदते रहे**
**किलकिलाते रहे।**
**हाथी हौदे से सजधज कर**
**पीठ पर बच्चों को घुमाता रहा**
**और अंकुश के नीचे गजराज कहाता रहा।**
**गैंडा नाले के पार**
**मस्ती से घास खाता रहा**
**दर्शकों को देखकर थूंथुन**
**हिलाता रहा।**
**लेकिन इस शेर को क्या हुआ?**
**पिंजड़े में चुपचाप बैठा रहा**
**दर्शक तालियाँ बजाते रहे**
**किंतु वह अपने में खोया रहा**
**अपमान से ऐंठे रहा**
**एक ने कंकड़ फेंका , एक ने गाली दी।**
**एक ने सीटी मारी, एक ने ताली दी।**
**शेर ने आहत चेहरा उठा कर**



**एक बार लोगों को देखा**
**लोगों की सहमी निगाहों तक**
**खिंच गई एक जलती– सी रेखा**
**फिर एक जॅभाई लेकर भीतर चला गया**
**जैसे भीड़ से कह गया हो**
**ओ लीलाधर्मी महान आत्माओं**
**तमाशा देखने शेरों के पास नहीं जाया करते**
**जाओ, सर्कस के जोकरों के पास जाओ।**

कभी लगता है यह एक परिदृश्य की रचना है और कभी शेर की मानसिकता में व्याप्त द्वंद्व को चित्रित करती कविता। बलवती यथार्थ की विवशता शेर है, जिसे आज तमाशबीन देख रहे हैं। उसकी बद्धता ही बेचारगी है, वरना शेर का सामना भी करने से दुनिया कतराती है। यहाँ दिन की परिवर्तित दार्शनिकता को नकारा नहीं जा सकता। समय– समय की बात है।

कविताओं की कोख भिन्न–भिन्न होती है। उसकी छटा में वैविध्य और विस्तार होता है। एक विशेष मौसम में कुछ विशेष कविताएं ही उपजती हैं। उसके लिए लचीलापन आवश्यक है, जैसे फसलों के लिए धरती की नमी। यह नमी संवेगात्मक और भावनात्मक भी है, जिसकी शून्यता में रचनाएं बांझ हो जाती हैं। एक ढांचे की उपज यांत्रिकता में होती है। कवि ने इस पीड़ा को गहराई से अनुभव किया है और फूलों, पत्तों, कॉटों के घिसने का दर्द कुछ इस तरह लिखते हैं–

**फूलों, पत्तों, कॉटों के रंग और कोण घिस गये हैं।**
**सारे मौसम एक से हो गए हैं–**
**सख्त और सपाट**
**हर कविता अपने जन्म के लिए**
**एक मौसम चाहती है।**
**समय की सपाट धरती पर**
**न फसल उग सकती है, न कविता**
**उस पर केवल मशीनें दौड़ सकतीं हैं।**

**हर क्षण, हर मोड़ पर एक ही आवाज उगलती हुई**
**एक ही धूल और एक ही धुआं फेंकती हुई।**

एक और रचना 'लौट आया हूँ मेरे देश' आदमी के संघर्ष की दास्ता है, जिसमें वह आदमी की मनोवृत्ति से वृक्ष की मनोदशा में समुन्नत हो चुका होता है। सब कुछ सहता हुआ, मौसम से न कोई प्रतिरोध, न परावर्तन। जैसे न्यूटन के नियम यहाँ लागू नहीं हैं। दार्शनिक कविता की सोच यहां विस्फुटित है। गमले के पौधों से उसकी तुलना नहीं की जा सकती, गमले परजीवी हैं और वृक्ष स्वतंत्र। इसलिए बार– बार वे अपने में लौट आते हैं।

**लो मैं लौट आया मेरे देश**
**फिर लौट आया हूँ।**
**जानता हूँ**
**लौट कर मैं फिर उन्हीं रास्तों से**
**भटकूंगा अपनी खोज में**
**आखिर जाता कहाँ?**
**मैं गमले का फूल तो नहीं**
**कि सुरक्षित कमरे से दूसरे कमरे में रख दिया जाऊं**
**मैं तो एक पेड़ हूँ एक खास जमीन में उगा हुआ।**
**आंधियां आती हैं**
**लूएं चलती हैं**
**ओले गिरते हैं**
**पेड़ हहराता है, कांपता है**
**डालियाँ और फूल – फल टूटते हैं**
**लेकिन हर बार वह अपने में लौट आता है।**

डॉ मिश्र ने अपनी कविताओं की यात्रा को अपने भीतर की यात्रा माना है, इसलिए यह अशरीरी यात्रा है। आनंद की अनुभूति होती है, अभिव्यक्ति नहीं। यह सब कुछ लिखा– पढ़ा वह अप्रतिम और अलौकिक है कि इसके साथ जाने न जाने की परवाह किए बिना, कवि इसकी महक में डूब जाना चाहता है।



**मुझे पता है कि**
**साथ नहीं जाएंगी कविताएं**
**नहीं जाएगा इनसे अर्जित यश**
**सब यहीं छूट जाएंगे**
**तब मैं अनंत यात्रा पर होऊंगा**
**तो लोग कहते हैं**
**श फिर मैं क्यों लिखे जा रहा हूँ कविताएं**
**जीवन के इस थके चरण में श**
**जब कविता भीतर गुनगुनाती है**
**यह शब्दों में उतर आती है**
**तब लगता है समय जीवन हो गया है।**
**एक महक– सी भर जाती है बाहर– भीतर**
**कमरे में ठहरे हुए क्षण – पंख**
**फड़फड़ाने लगते हैं।**
**पंछी गाने लगते हैं।**

# कबीर को सोचते हुए

कबीर जीवन का हिस्सा हैं, व्याख्या हैं, इसको सम्यक व प्रतिपूरक बनाने की महत्वपूर्ण आवश्यकता हैं। कबीर कोई आयाम– वितान नहीं चाहते हमारे वैचारिक धरातल पर अपनी समस्त अनुभवों को साझा करते हैं। उनकी पद्धति जीवन शैली से विरक्तता की मांग नहीं करती बल्कि उसमें अगति की मांग करती है।

इस युग में कबीर हमारी अनिवार्यता हैं। इसके दो कारण स्पस्ट दिखाई देते हैं– अतिबौद्धिकता से अस्वीकारता का अतिरेक और अतिगतिशीलता से चिंतनहीनता का प्रवेश। दिन भर हम इतना कुछ देख और सुन रहे हैं पर उसमें से टिकता कुछ भी नहीं। आया राम गया राम वाली स्थिति है। सबको अभिव्यक्ति का चस्का लग चुका है, कोई किसी से अपने को कम आंकने के दौर में नहीं है। बोलने के अधिकारों का हनन कदापि नहीं होना चाहिए, पर इसकी कोई परिसीमा तो खींचनी ही होगी–

**अति का भला न बोलना अति की भली ना चूप।**
**अति का भला ना बरसना अति की भली ना धूप।**

अस्वीकार्यता के इस दौर में हम कहीं न कहीं अहंकार से जुड़ते जाते हैं। विद्वता का परिवेश क्या आत्मतुष्टि का ही होना चाहिए–? या इसमें समष्टि के सुचिंतन की प्रविष्टि भी होनी चाहिए।

**पोथी पढ़ पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय।**
**ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।**

अतिचंचल नदी में कोई बिम्ब नहीं बन सकता, यही स्थिति हमारे वैचारिक ठहरावों की है। बहुत गूढ़ एकाग्रता के बिना स्व का साक्षात्कार संभव नहीं है।

**माला फेरत जुग भया गया न मन का फेर।**
**कर का मनका डार दे मनका मनका फेर।**



**कबिरा यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं।**
**सीस उतारै हाथि करि, सो पैठे घर माहिं।**

कबीर ने दिखावे और आडंबर को भी अहितकर और अनुचित प्रमाणित किया था। शरीर की नश्वरता की बात जितने खुले मन से उन्होंने की थी , वह दूसरों में उतनी स्थापित नहीं हुई है। और फिर चौबीस घंटे केवल उसे संवारने का उपक्रम ––––––

**माटी कहे कुंभार से तू क्या रौंदे मोय।**

**इक दिन ऐसा आएगा मैं रौदूंगी तोय।**

आधुनिक संसाधनों का प्रभाव देर रात तक जीवन को अपने में लिए रहता है– विकलता के पक्ष सघन और प्रबल होते हैं। असंख्य चाहे– अनचाहे विचारों से हमारा सरोकार पड़ता है इसलिए जीवन आत्म– द्वंद्व में है। सब कुछ इतना सुलभ हो गया है कि सक्रियता कुंद हो रही है। प्रकृति से हम अनभिज्ञ हैं, महानगरों में दिन बसों और मेट्रो के समय से होता है। रातें मोबाइल बंद होने पर। यहाँ भी हमारी संगत व्याधिकारक है। हम केवल दृश्य और श्रव्य साधनों पर अवलंबित हो चुके हैं। पठन प्रक्रिया या अध्यवसाय मनोयोग मांगता है, तब जाकर हम कहीं स्थापित हो पाते हैं। चपलता में संधित्व बोध नहीं होता।

**माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।**
**मनुआ तो दस दिसि फिरै, सो तो सुमिरन नाहीं।**

**कबिरा संगत साधु की हरै और की व्याधि।**
**संगत बुरी असाधु की आठो पहर उपाधि।**

कबीर ने साधुता पर बहुत जोर दिया है, बार बार इसको वरण करने की बात कही है। साधुता अंग की व्यंजना नहीं, आत्मा की रंजना है। इस प्रक्रिया में हम प्रौढ़ होते हैं। शालीनता, सहृदयता, संवेदनशीलता के सहचर बन कर हम स्वलाभार्थी बनते हैं। बाह्य परिवर्तन नहीं आंतरिक उद्बोधन की आवश्यकता स्वीकारते हैं–

**साधु भया तो क्या भया माला फेरि चारि।**
**बाहरी ढोला हींगला, भीतरि भरी अंगारि।**

कवि कबीर ने जीवन की आध्यात्मिक प्रयोगशाला से जो अनुभूतियाँ प्राप्त की उसे लिपिबद्ध करके आलंबियों के लिए एक मार्ग प्रशस्त किया। इस तरह भीतर से वे संत और बाहर से समाज सुधारक दिखे। उनके दर्शन में क्षणभंगुरता को अनेक बार चित्रित किया गया है। उनका मानना था कि आदमी की सबसे बड़ी भूल उसकी अश्वरता की सोच है। वह अपने सुख, समृद्धि और साम्राज्य को अविनाशी मान लेता है अतः कुकर्मो और अनुचित साधनों से भी सांसारिक लिप्साओं को बढ़ावा देता है। मृत्यु का स्मरण अनीतियों से बचाव का कवच है।

**माली आवत देखि के कलियां करें पुकार।**
**फूलि फूलि चुन लई काल्हि हमारी बार।**

**झूठे सुख को सुख कहैं मानत हैं मन– मोद।**
**जगत चबैना काल का कुछ मुंह में कुछ गोद।**



# श्री पावापुरी तीर्थ –जीव मैत्री धाम
# (यात्रा वृतान्त)

जैन धर्म की शिक्षाएं और दर्शन आज के समय में बहुत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं।जैन धर्म मुख्यतः तीन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है – जिसमें अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकांत प्रमुख हैं।

'अहिंसा परमो धर्म' के मंत्र पर स्थापित इस विचारधारा में सबके लिए करूणा व क्षमा की भावना है,जो नित्यप्रति सबका कल्याण चाहती है। अनेकांत में भगवान महावीर ने जाति, समुदाय,धर्म,रंग, क्षेत्र, भाषा आदि से ऊपर उठकर जीने का संदेश दिया। उन्होंने कहा कि हमें अपनी आस्थाओं के साथ दूसरों के दृष्टिकोण का भी सम्मान करना चाहिए। कर्मवाद पर प्रमुखता से चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि – अपने कर्मों का फल स्वयं भोगना पड़ता है। इसलिए हमें सदा सचेत रहना चाहिए।

सामाजिक क्षेत्र में भगवान महावीर ने सबसे बड़ी क्रांति करते हुए, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म साधना का अधिकार दिया।नारी शक्ति को भी इसमें शामिल किया और गणमान्य सम्मान दिया। समन्वय की दृष्टि की से विश्व प्रेम और सहृदयता की अलख जगाई।

पिछले दिनों हम राजस्थान के सिरोही जिले में अवस्थित पावापुरी तीर्थ यात्रा पर निकले। रात की बस से सिरोही पहुंच कर, अतिथि गृह में आराम किए, सुबह स्थानीय तीर्थ स्थलों का दर्शन कर, पावापुरी तीर्थ के लिए निकले, जो लगभग 20 किमी.की दूरी पर था, आटो लगातार चल रहे थे,हम आधे घंटे में मुख्य द्वार पर पहुंच गए। भव्य द्वार की लाल गुलाबी पत्थरों पर,कलात्मक बारीकियों को देख मन प्रफुल्लित हो गया। बसंत श्रृतु और चारों ओर हरियाली का साम्राज्य। आंखों में सभी दृश्य भरने लगे, क्यों कि वहां फोटो खींचने और अनावश्यक पोज देने की मनाही थी,जो बहुत अच्छी है, इसी से वहां के फूल,पत्ते चटक और लहरदार हैं। घास पर चलने की मनाही तो थी ही, जुर्माना भी था। वनस्पतियों में भी जीव का दर्शन कर,उनके दमन या कुचलने पर सख्त मनाही थी।बस देखिए और मंत्रमुग्ध होईए।

ठीक सामने ही शंखेश्वर पार्श्वनाथ का भव्य मंदिर था, जिसे दूर से प्रणाम कर, कमरा बुक करने बढ़े। ठहरने की उत्तमोत्म व्यवस्था कम दर पर उपलब्ध थी।

कमरों की सफाई और पानी की व्यवस्था का क्या कहना –?

हां, पानी के नियंत्रित सदुपयोग की बात हर जगह लिखी हुई थी, क्यों कि जल का संचयन वहां कठिनाई से किया जाता है,वैसे भी हर प्रबुद्ध नागरिक इस बारे में सचेष्ट रहता है। बिजली के लिए भी ऐसा ही लिखा हुआ मिला। उपयोग चाहे जितना करें, दुरूपयोग नहीं होना चाहिए।

सफाई का आलम तो क्या कहें, परिसर में कोई बाहरी खाने की चीज अंदर ले जाना वर्जित था और पकड़े जाने पर दंड भी देना होगा, इस वजह से कोई रेपर, खोली, थैली, कागज, प्लास्टिक कहीं देखने को नहीं मिला। जो वहां भोजनालय में बना है,उसे समय–समय पर ग्रहण कीजिए,अन्यथा अतिरिक्त कुछ खाने– पीने की इच्छा होने पर बाहर अनेक दुकानें हैं जहां सब मिलता है। हम भी शाम की चाय के लिए बाहर गए। और वहां के आसपास के गांवों आदि की जानकारी ढाबे पर लिए।

चारों ओर कमरे और चौड़े बरामदे के अलावा बीच में बड़ा सा सीमेंटेड आंगन था।जिसकी रोज धुलाई होती है। आंगन व बरामदे में कपड़े सुखाने पर पाबंदी थी , जिससे वहां फूहड़पन न लगे। सीढ़ियों पर क्रम से गमले सजे थे, जिनमें खिले लाल,पीले,बैंगनी, बासंती रंगों के फूल इतिहास रच रहे थे।

वहां के देखने योग्य स्थलों में महाराणा प्रताप स्मारक है, जहां जाकर वीरता और शौर्य की कहानियां याद आती हैं। विशालकाय मूर्ति को देखने के लिए लोगों की भीड़ लगी रहती।परिसर में चारो तरफ जैन धर्म के भक्तिमय गीत बहुत धीमे स्वर में बजते रहते थे, जिससे मन का परिष्कार होता रहता था। धार्मिक स्थलों पर जाकर भी मन को शांति न मिले, ऐसा नहीं हो सकता। कबूतर चौक का दृश्य चौंका देने वाला था, हजारों की संख्या में दाना चुगते कबूतर, निर्भीक और सुरक्षित महसूस कर रहे थे, लोग दाना डालने और कबूतर तथा अन्य पक्षी आह्लादित हो जाते। सब जीवों पर दया की पाठशाला थी वो स्थली। पानी का बड़ा सा तालाब भी शाम को दर्पण बन जाता। पक्षियों का कलरव सुनने की संकल्पना वहां परिपूरित हो रही थी।शांत मौत जल मानो किसी जैनी सा साधना में लीन है।

हर जगह साइन बोर्ड पर, हर तरह की समुचित सूचनाएं लिखी हुई थीं।किसी से अधिक पूछने की आवश्यकता नहीं थी। सड़कों पर कोई कचरा नहीं, कचरे पेटियां रखी थी चारो ओर। जगह– जगह सदुपदेशों से लोगों में सात्विकता भर रही थी।



वहां का बहुत बड़ा आकर्षण वहां की गौशाला है, जिसमें हजारों गायें स्वस्थ और प्रसन्न रह कर,अपना आशीर्वाद प्रदान कर रही हैं। उनको खिलाने के लिए चारा बिक्री केंद्र था, जहां गुड़ भी था।लोग चारा आदि लेकर गौशाला जाते और उन्हें खिलाने का आनंद लेते।छोटे बच्चों को बहुत मजा आ रहा था, छोटे बछड़ों को पालने में झुलाने की व्यवस्था थी।यह बहुत रोचक लगा। गायें संतुष्ट और पुष्ट थीं।हर पेड़ पर अनेक तरह के पक्षी आकर बैठे रहते, चूंकि परिसर में शांति थी,कोलाहल नहीं था,तो ये जीव भी, सहजता से आश्रमों की तरह विचरण करते थे। वृक्षों के लिए भी उनके मन में करूणा थी, अनावश्यक पत्ते तोड़ना,डाल हिलाना, फूल तोड़ना सब मना था,इनके संरक्षण पर सबका ध्यान था।

प्रमुख जैन तीर्थकरों के चित्र सजे हुए थे, जिनमें श्रृषभनाथ, अजित नाथ द्ध बाहुबलीऋ,संभवनाथ, अभिनन्दनाथ,सुमतिनाथ,पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ,चन्द्रप्रभु, पुष्पदंत सुविधि,शीतलनाथ, श्रेयंसनाथ,वासुपूज्य,विमलनाथ, अनन्तनाथ,धर्मनाथ, शांतिनाथ,कुन्थनाथ,अरनाथ,मल्लिनाथ,मुनिसुवर्थ,नमीनाथ, नेमीनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर।

इसी तरह षोडश विद्यादेवी की प्रतिमाएं भी जहां तहां उत्कीर्ण दिखीं।जो रोहिणी, प्रश्यप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्राकुंशी, अपरातिचक्र, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, गौरी, गान्धारी, महाज्वाला, मान्वी, वैराढ्य, अच्युता, मानसी, महामानसी।

इनके अलावा अन्य विद्या की देवियों में – सरस्वती, पद्मावती हैं। सरस्वती का विशाल मंदिर भी इसी प्रांगण में है, जहां छात्रों की भीड़ लगी रहती। दिव्य प्रतिमा, सर्व आभूषण युक्त, हाथों में पुष्प,मोहक मुद्रा वाली मां सरस्वती हंस के वाहन से सुशोभित दिखीं। बड़े बड़े वरदहस्त वाली मां कमलधारिणी रूप में मनमोहक लग रही थीं। सीढ़ियों पर अनावश्यक बैठना, आधे अधूरे कपड़े पहनना, विदेशी परिधान में परिसर में घूमना, फोटो सेशन चलाना, झाड़ियों को नुकसान पहुंचाना, खुले सिर मंदिर में जाने की सख्त मनाही थी। तीर्थधाम को पिकनिक स्पश्वट बनाने से बचाए रखना उनका ध्येय था, जिसमें वो सफल दिखे। जैन धर्म यह मानता है कि वृक्ष में भी आत्मा होती है। यहां चौत्य वृक्षों या वनस्थली की परंपरा रही है।इनके यहां विशेष रूप से पीपल, अशोक, बरगद आदि वृक्षों की विशेष महत्ता दी गई है।ये आक्सीजन वृक्ष भी कहे जाते हैं।साधना के लिए इनका बहुत महत्व है।

जैन धर्म के पांच मूल सिद्धांत हैं – ये जीवन जीना सिखाते हैं और अंतर्मन में अनंत शांति की अनुभूति कराते हैं। अहिंसा में मानसिक हिंसा भी वर्जित है। किसी का अनिष्ट सोचना भी पाप है।सत्य जहां मिले उसे ग्रहण करना चाहिए। जैसा कर्म होगा, वैसा ही फल मिलेगा। संग्रह की प्रवृत्ति को त्यागना चाहिए।

मुख्य मंदिर में जाकर परम शांति की अनुभूति हुई। घंटों अकेले ही डूबे रहे। भव्य मंदिर,जो ऊंचाई पर स्थित था, सीढ़ियों द्वारा पहुंचना पड़ता है। मंदिर की मुख्य प्रतिमा शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवान की है।अगल बगल अन्य देवी–देवताओं को स्थापित किया गया है।सब कुछ समय पर संचालित होता है।आरती के समय अच्छी भीड़ हो जाती है। मधुर ध्वनियों के बीच दीप बाती से आरती करके, मंत्रमुग्ध हो जाता है आदमी।

एक बहुत शानदार चित्रशाला भी है – जो गोलाकार रूप में बनाया गया है। भीतर पहुंच कर अनेक अवतारों के चित्र,उनके संदेशों पर आधारित चित्रावलियां, मानव जीवन की सोच की मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर आधारित चित्र,उपदेशात्मक और भावनात्मक चित्रों से सुसज्जित इस भवन में जीवन को जीवन मिलता है।



# हिन्दी का विश्व और विश्व में हिन्दी
# ( हिन्दी का फैलता क्षितिज और सिकुड़ता समाज)

न्यूयार्क से प्रकाशित विश्व के भाषायी मानचित्र में हिन्दी को सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा माना गया है। चीनी भाषा अनेक रूपों के कारण दूसरे स्थान पर रखी गयी है और अंग्रेजी तीसरे स्थान पर आती है । विश्व के ३७ देशों के ११० विश्वविद्यालयों में (यह बीसवीं शताब्दी के अन्त का आंकड़ा है) इसके उच्चस्तरीय अध्ययन की व्यवस्था है । हिन्दी देश की राजभाषा, सम्पर्क – भाषा, संघभाषा, लोक–भाषा, शैक्षिक व साहित्यिक भाषा, जन भाषा, जन संचार के माध्यमों की प्रमुख भाषा और आधुनिक युगबोध की भाषा अर्थात सम्पूर्ण समन्वय की वाणी है । हिन्दी फिल्मों व मनोरंजन का उभरता सशक्त माध्यम बन चुकी है । उदारीकरण के दौर में यह लाभ या व्यवसाय की भी प्रमुख भाषा है । यह पूर्णतः ध्वन्यात्मक है । इसकी लिपि देवनागरी सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है । यही नहीं, हिन्दी संगणकों के भी समानुकूल मानी जाती है। मीडिया के असली बाजार की खोज रूपर्ट मरडोक जैसे लोगों ने सबसे पहले की । यद्यपि हिन्दी फिल्मों और दूरदर्शन के हिन्दी कार्यक्रमों से हिन्दी भाषा काफी बिगड़ी है, पर यह भी सही है कि हिन्दी के प्रचार–प्रसार में फिल्मों और दूरदर्शन के कार्यक्रमों विशेषकर धारावाहिकों का बड़ा हाथ रहा है ।– –

ऑकड़े बता रहे हैं कि हिन्दी के समाचार पत्र प्रसार और पाठक–संख्या के मामले में अंग्रेजी के अखबारों से बहुत आगे हैं। भारत में अंग्रेजी बोलने वालों की संख्या लगभग 2 प्रतिशत है फिर भी अंग्रेजी परस्त लोग अंग्रेजी को आधुनिकता का एक मात्र वातायन मानते हैं। वे हिन्दी भाषी क्षेत्रों को 'काऊबेल्ट' और 'बैंकवार्टर्स' कह कर विषवमन करते हैं। अंग्रेजी आज आभिजात्य का पर्याय और सभ्यता का मानदण्ड बन गयी है। जबकि भाषा अहंकार का आभूषण नहीं, सम्प्रेषण का माध्यम है। भाषा केवल व्याकरण की वस्तु नहीं, वह संवेदनाओं के साधारणीकरण का साधन है और साहित्य भाषा का सबसे सर्जनात्मक और ऊर्जस्वित रूप है और हिन्दी की असली शक्ति सबसे अधिक उसी में संपुंजित होती है। वैसे हिन्दी परिवार दृष्टि बहुल है, किन्तु समरसता हिन्दी का जातीय चरित्र है। रचनात्मक साहित्य, शब्द–कोष, विश्वकोश, व्याकरण, काव्य शास्त्र, भाषा–विज्ञान के अतिरिक्त विज्ञान 1 विधि,

चिकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रौद्योगिकी, प्रशासन, कूटनीति और कला–संस्कृति सभी क्षेत्रों में हिन्दी की पूर्ण प्रतिष्ठा आवश्यक है। तभी हम हिन्दी को समग्रता में स्थापित कर सकेंगे; किन्तु देखना यह भी है कि व्यापक आत्म–प्रसार की प्रक्रिया में हिन्दी भाषा हिंगलिश या खिचड़ी भाषा न बन जाय । खिचड़ी रोगियों को दी जाती है। अतः ऐसी भाषा रुग्ण चेतना का परिचायक होती है, उसे 'वर्ण संकर' भाषा कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। किन्तु भाषिक शुद्धता के कृत्रिम प्रयास में 'लौह पथ गामिनी विश्राम स्थल' जैसे शब्दों का आविष्कार उचित नहीं है । लोक – मानस में सहज ढंग से विकसित (संक्रमित नहीं) शब्दों का व्यवहार ही वांछित है। किन्तु, खेद है कि स्थिति ठीक उल्टी है । शुद्ध हिन्दी या संस्कृत निष्ठ हिन्दी बोलने वाले को विदूषक की भाँति देखा जाता है । मानो शुद्ध हिन्दी कोई मजाक की वस्तु हो । 'अंग्रेजी की वर्तनी लिखते समय हम अत्यन्त सावधान रहते हैं। अतः उसमें अशुद्धि या त्रुटि नहीं होती, किन्तु हिन्दी की वर्तनी हम शायद ही शुद्ध लिखते हों । स्वभावतः अंग्रेजी वर्तनी, (स्पेलिंग) हम रटते हैं और हिन्दी पर ध्यान नहीं देते । हमने हिन्दी को भुला दिया है । शायद इसीलिए वर्ष में एक दिन उसे याद कर लेते हैं । १४ सितम्बर को 'हिन्दी दिवस मनाते हैं। क्योंकि अंग्रेजी – दिवस तो रोज ही है । इसलिए उसे मनाने की जरूरत नहीं । क्या इंग्लैण्ड में 'अंग्रेजी दिवस मनाया जाता है ? तो १४ सितम्बर को, वह भी हिन्दी डे के रूप में उसका वेलकम करते हैं । लार्ड मैकाले के हम मानस पुत्र अंग्रेजी में बोलते ही नहीं, अंग्रेजी में सोचते भी हैं। हम मानसिक दासता के शिकार हैं। स्वामी विवेकानन्द विश्व–धर्म सम्मेलन' में बोलने जब शिकागो गये थे, तब उनकी माध्यम भाषा अंग्रेजी थी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अपनी बात रखनी थी । सो बोलते अंग्रेजी में थे, किन्तु सोचते हिन्दी में थे ''मेरे प्यारे अमेरिका वासी भाइयो और बहिनों ! यह भारतीय संस्कृति की सोच का ढांचा है। हिन्दी हमारी राष्ट्रीय चेतना का संवाहक है, जातीय अस्मिता का प्रतीक है। हिन्दी भारतीयता का पर्याय है। मु. इकबाल के शब्दों में ''हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा ।" – –

सांस्कृतिक संलग्नता का सर्वाधिक प्रशस्त उपकरण है भाषा। 'उदारीकरण' के नाम पर भारतीय आत्मा को निर्वासित करने का बहुत बड़ा षड़यन्त्र चल रहा है। खुले बाजार में बिकने वाले विदेशी बीज और विदेशी भाषा क्या भारतीय भूगोल और जलवायु के अनुरूप हो सकते हैं ? भारतीय बीज (अनाज, फल, आदि के) या भारतीय भाषा किस मामले में विदेशी वस्तुओं से न्यून है ? राम के सम्मुख भी विदेशी बाला शूर्पणखा प्रणय–निवेदन करती है, परन्तु राम सीता की ओर इशारा



करके उसे उसके बौने कद का आभास दिला देते हैं । किन्तु, हमें तो विदेशी वस्तुएँ इतनी प्रिय है कि सीताएँ छूट जाती है और अंग्रेजी से 'गठबन्धन हो जाता है। अंग्रेज चले गये पर अंग्रेजी अभी भी हम पर शासन कर रही है। हम भारतीयों को अपनी पत्नी अच्छी नहीं लगती, प्रेमिकाओं की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। हिन्दी के प्रति हीनता–बोध का आविर्भाव एवं अंग्रेजी के माहात्म्य की गौरवपूर्ण –––

स्वीकृति इसी मानसिकता का प्रतिफल है। हिन्दी के शिक्षक भी अपने बच्चों को कान्वेण्ट स्कूलों में पढ़ाने का शौक रखते है जबकि सांस्कृतिक मन अपनी मूल मातृभाषा में ही विम्बित हो सकता है गांधीजी ने जेल से मृत्युशय्या पर पड़ी पत्नी को गुजराती में पत्र रखने की अनुमति न मिलने पर पत्र ही नहीं लिखा और कहा कि ष्मेरी बीमार और मरणासत्र पत्नी को पत्र मिले या न मिले, मै अंग्रेजी में पत्र नहीं लिखूँगा। उसी गाँधी के इस देश में आज भारतीय भाषाओं के खण्डहर पर अंग्रेजी के नये–नये अंकुर फूट रहे हैं। भेदनीति' की शिकार भारतीय भाषाएं विरोध की मिथ्या आशंका में अंग्रेजी के डण्डे से एक दूसरे को पीटती रहीं और देख नहीं पायी कि इस तरह वे खुद को पीट रही हैं और इन ५० वर्षो में हमने अपनी सभी समृद्धतम भाषाओं को 'बोली' के कगार पर पहुँचा दिया है । इस भयावह परिणति का अधिकांश एक पूर्व प्रधान मंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू की आज भी संसद में अनेक छवियाँ दिखायी पड़ती हैं, जिनके आगे तथाकथित 'स्वदेशी' समर्थकों को घुटने टेकने पड़ते हैं । लगता है, सत्तातंत्र ऊँचे तरंगदैर्ध्य की ध्वनियाँ ही सुन सकता है । खैर, हिन्दी को उपेक्षाओं से ही ऊर्जा मिली है । गुलामी के समय ही हिन्दी का सबसे अधिक विकास हुआ। हिन्दी कभी सरकारी संरक्षण में नहीं पली । अपनी आन्तरिक शक्ति के कारण उसका विकास हुआ है। किन्तु; विकास हुआ है, विस्तार नहीं । हिन्दी मनुष्य मात्र के अपराजेय भाव की भाषा है । इसीलिए छठें विश्व हिन्दी सम्मेलन, लंदन में उसे विश्व – संवाद की भाषा बनाने के सार्थक प्रयास हुए । किन्तु; विडम्बना यह है कि विश्व –

संवाद की भाषा अपने ही देश में विवाद का विषय बन गयी । आज कानून का कृपाण लेकर हिन्दी सबकी छाती पर सवार होने नहीं चली है, वह विश्व–मानस और हृदय पर प्रतिष्ठित होकर सार्वभौम बनना चाहती है । वह आने वाले मनुष्य की आशाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति में समर्थ होने के कारण आदर पायेगी . डा. सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार यदि हिन्दी हमें रोटी देने में समर्थ हो जाय, तो हिन्दी अधिक कल्याण सम्भव है । अन्तर्राष्ट्रीय फलक पर हिन्दी को सर्वाधिक समुन्नत भाषा के रूप में देखने के लिए अप्रवासी भारतीय हमसे अधिक लालायित हैं । उनकी हिन्दी –

भक्ति स्तुत्य है ।तुलसी ने लिखा है–

**'तुलसी जिनके मुखनि तें, धोखेहुं निकसत राम,**
**तिनके पग की पनही, मोरे तन को चाम।'**

जो हिन्दी की सेवा में समर्पित हैं, भाषा रक्षा के लिए शहीद होने वाले हैं, मेरे शरीर की चमड़ी यदि उनके पैरों का जूता बन सके, तो मैं अपने को कृतार्थ समझूँगा।

संस्कृत यदि आज भी उत्सव और संस्कार की भाषा है तो मानुष भाव से संस्फूर्त हिन्दी अपनी नमनीयता के कारण हमारे वैचारिक क्षितिज का विस्तार करने वाली भाषा है. यह भारतीय भाषाओं या फिर हिन्दी बोलियों का हक छीनने वाली नहीं, उनकी सीमाओं का विस्तार करने वाली है. यह मनुष्य को उसके पूरे संदर्भ से जोड़ कर अधिक समर्थ रूप में आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाली भाषा है. भाषा को देश की आत्मा कहा जाता है. यह पराए हाथों में तब भी नहीं बेंची जाती जब देश राजनीतिक रूप से पराधीन होता है. मातृभाषा और देशी भाषा बच्चों में सांस की तरह स्वाभाविक होती है. इस लिए अंग्रेजी माध्यम की तरह उनकी बौद्धिक क्षमता भाषा रटने में नहीं, ज्ञान प्राप्त करने में लगती है. कान्वेंट स्कूलों में सांस्कृतिक अस्मिता, मूल्य – चेतना और एक सहज पारिवारिक और देशीय आत्मीयता का विसर्जन हो जाता है. और प्राप्त होती है दोहरी संज्ञाओं से ग्रस्त चेतना. साम्राज्य वादी स्वार्थों से लैस भाषा पराधीनता की सबसे मजबूत जंजीर होती है और वह एक देश के भीतर से देश को छीन लेती है. प्रोफेसर महावीर सरन जैन के अनुसार अंग्रेजी मातृभाषियों से हिन्दी मातृभाषियों की संख्या अधिक है. चीनी भाषा भाषियों की संख्या हिन्दी से अधिक है किन्तु उसका प्रयोग क्षेत्र या व्याप्ति कम है. और उसकी बहुरूपता भी खटकती है. आज हिन्दी विश्व के लगभग 120 विश्व विद्यालयों में पढ़ाई जाती है. उसका क्षितिज फैल रहा है किन्तु समाज सिकुड़ रहा है. मारीशस में संपन्न हुए द्वितीय विश्व हिन्दी सम्मेलन में डा. कर्ण सिंह ने कहा था कि आज जब हिन्दी भारत की राष्ट्र भाषा से विश्व भाषा बनने जा रही है तो हिन्दी के लेखकों का दायित्व बढ़ जाता है. हिन्दी मानव जीवन को शांति, प्रेम, करुणा और बन्धुत्व का संदेश देगी. हिन्दी यूनेस्को की भाषा बन चुकी है किन्तु अब उसे संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनना है' वैसे संयुक्त राष्ट्र संघ में अटल बिहारी वाजपेयी और नरेंद्र मोदी एकाधिक बार हिन्दी में भाषण दे चुके हैं. अप्रवासी भारतीयों से अनेक देशों में मोदी जी को जो प्यार मिला है वह अभिभूत कर देने वाला है। इस प्रकार भाषा के सांस्कृतिक संबन्धों की परख करते हुए संपर्क



भाषा, राजकाज की भाषा और मौलिक साहित्य की भाषा के रूप में हिन्दी के विकास और विस्तार के लिए संकल्प बद्ध होकर हमें इस सारस्वत अनुष्ठान में अपनी समिधा अर्पित करना होगा.

सन्दर्भ सूत्र :


1. संपादकीय लेख – प्रभाकर श्रोत्रिय – वागर्थ (जनवरी – 1999 अंक)
2. साहित्य अमृत – विश्व हिन्दी सम्मेलन विशेषांक (जुलाई – 2007 अंक)
3. शंकर पुणतांबेकर – दैनिक जागरण (14 सितम्बर का संपादकीय पृष्ठ पर आलेख –1999)
4. संपादकीय लेख – प्रो विद्यानिवास मिश्र (साहित्य अमृत – 1998)

# भारतीय लोक संस्कृति और नाथ संप्रदाय

हमारी भारत भूमि साधु, संतों और संन्यासियों की साधनाओं, मान्यताओं, वैचारिकी के लिए सदा से उर्वरा रही है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक यह धरा किन्हीं मंत्रो, प्रवचनों, परिक्रमा, हवन, पूजन, जप, तप, अर्चन, व्रत, पाठ, आहुति आदि के आनंदमय वातावरण से आच्छादित है। कुछ वैदिक परंपराएं अनादिकाल से चली आ रही हैं। कुछ समय–समय पर देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार उपजती हैं, तो कुछ कलेवर बदल कर नवीनता लिए प्रस्तुत होती हैं ।ऐसा कोई घर नहीं जहां किसी न किसी आस्तिक मान्यता की स्थापना न की गई हो ।बचपन से ही हमें ऐसे यायावरी साधु– संतों को सम्मान और दान देना सिखाया जाता है।

मेरी जन्मभूमि गोरखपुर के पास होने के कारण गोरखपंथी योगियों का आना– जाना लगा रहता था। ये गेरूए वस्त्र के संन्यासी हाथ में सारंगी लिए दरवाजे – दरवाजे भजन सुनाया करते थे,जिससे जो बन पड़ता देता था। खिचड़ी (मकर संक्रांति) पर इनका आना– जाना बढ़ जाया करता, क्यों कि गोरखपुर में इनका बहुत बड़ा मेला लगता है ।ये योगी जीवन के आचरण और विरक्ति के गीत गाते हुए गुरू सेवा में जीवन व्यतीत करते थे।

नाथ संप्रदाय भारत का एक प्रसिद्ध हिंदु पंथ है, जिसमें बौद्ध ,शैव और योग की परंपराओं का समन्वय दिखाई देता है। इसमें हठ योग की परंपरा प्रधान है। इनके यहां गुरू गोरखनाथ का स्थान बहुत उच्च और महत्वपूर्ण है, क्यों कि उन्होंने इस संप्रदाय के बिखराव और इसके योग विद्याओं को एकत्र किया, अतः उन्हें इसका संस्थापक माना जाता है ।इनके आरंभिक दस नाथ निम्न थे –

1 – आदिनाथ
2 – आनंदिनाथ
3 – करालनाथ
4 – विकराल नाथ
5 –महाकाल नाथ
6 – काल भैरव नाथ
7 – बटुक नाथ



8 – भूत नाथ
9 – वीर नाथ
1 0 – श्री कांत नाथ

गोरखनाथ या गोरक्षनाथ जी महाराज प्रथम शताब्दी के पूर्व नाथ संप्रदाय के योगी थे,इसका प्रमाण राजा विक्रमादित्य के द्वारा बनाए गए पंचांग है, जिन्होंने विक्रम संवत की शुरुआत प्रथम शताब्दी से की। गुरू गोरक्षनाथ जी राजा भर्तृहरि एवं इनके छोटे भाई विक्रमादित्य के समकालीन थे। गुरू गोरखनाथ ने पूरे भारत का भ्रमण किया और अनेकों ग्रंथों की रचना की। गोरखनाथ ने अपना स्थाई आश्रम जिस स्थान पर बनाया उसका नाम गोरखपुर पड़ गया। यहीं से उनकी शिष्य परंपरा आगे बढ़ती रही ।

गोरखनाथ ने योगियों के लिए ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य बताया ।गीता में वर्णित उपयुक्त बातें भी गुरू गोरखनाथ ने अपनी सबदी के माध्यम से लोगों को समझाई ।इंद्रिय संयम को समझाते हुए लिखते हैं कि ––––

**यन्द्री का लड़बड़ा जिभ्या का फूहड़ा।**
**गोरख कहे ते पतंति चूहड़ा।**
**काछ का जति,मुख का सति**
**सो सत पुरुष उत्तमे कथी।**

योग के लिए आसन,आहार,नींद आदि का जो वर्णन गीता में है,वैसा ही वर्णन गोरखनाथ ने इस सबदी में किया है –

**आसण दिढ़ आहार दिढ़ जे न्यांन्दा दिढ़ होई।**
**गोरख कहै सूणो रे पूता, मरे न बूढा होई।**

गोरखनाथ कहते हैं कि योगी को केवल अनाज और पानी से बना सात्विक आहार लेना चाहिए।

**जिभ्या सवाद तय जन खोजै, हेला करे गुरू वाया।**
**अगनि बिहूंणा बंध न लागे, ढलक जाई रस काचा।**

गोरखनाथ ने योगियों के लिए मांस और मदिरा का घोर विरोध किया था,उनका मानना था कि – इससे बुद्धि का नाश होता है।

**अबधू मांस भषंत दाया का नास।**
**मद पीवत जहां प्राण निवासा।**
**भांगि भषंत ज्ञान, ध्यान सोखंत।**
**जम दरबारी ते प्राणी सोवंत।**

नाथ संप्रदाय ने निडर,समरस, और सुखी समाज की संरचना को अपना लक्ष्य बनाया। आत्मतत्व के बोध से सात्विक, आध्यात्मिक, जीवन को दार्शनिक और आदर्श रूप में प्रस्तुत किया ।सभी को सज्जन,संतोषी,संयमी, सहनशील, संग्रहत्यागी और समभाव से युक्त होने का उपदेश दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि – 'कबीर आदि निर्गुण मतवादी संतों की वाणियों की बाहरी रूप रेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह बौद्ध धर्म के अंतिम सिद्धों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबंध है। वे ही पद,वे ही दोहे,वे ही चौपाइयां जो कबीर ने व्यक्त की हैं जो उक्त मत नाथपंथ को मानने वाले पूर्ववर्ती संतों ने की थीं। क्या भाव,क्या भाषा,क्या अलंकार,क्या छंद,क्या पारिभाषिक शब्द सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं। यह कहना अतियुक्ति नहीं है कि विचार में कबीर गोरखनाथ के ही मध्ययुगीन संस्करण थे। कबीर भी गोरखनाथ को स्वीकारते हुए लिखते हैं कि –

**गोरखनाथ न मुद्रा पहिरी मस्तक नहीं मुडाया।**
**ऐसा भगत भया भू उपर गुरू पै राज छुडाया।**

गुरू गोरखनाथ,नाथ साहित्य के प्रथम आरंभ कर्ता थे, उन्होंने नाथ साहित्य की सर्वप्रथम शुरूआत की ।इनके उपदेशों में शैव तंत्रों और योग का समावेश है। इनके प्रमुख चालीस रचनाओं का सृजन किया,जो दोहों और पदों के रूप में पाए जाते हैं। कहीं – कहीं चौपाई का भी प्रयोग मिलता है ।परवर्ती संत साहित्य पर इनका गहरा प्रभाव है। इनकी कृतियां हैं –

1– सबदी, 2–पद, 3– शिष्या दर्शन, 4– प्राण सांकली, 5– नरवै बोध, 6– आत्मबोध, 7– अभय मात्रा जोग, 8– पन्द्रह तिथि, 9– सप्तवार, 10– मछिंद्र गोरख बोध, 11– रोमावली, 12– ग्यान तिलक, 13– ग्यान चौंतीसा, 14– पंचमात्रा, 15– गोरख गणेश गोत्र, 16– गोरखदत्त गोष्ठि, 17– महादेव गओरखगउष्टइउ, 18– शिष्ट पुराण, 19– दया बोध, 20– जाति भौंरावली, 21– नवग्रह, 22– नवरात्र , 23–अष्टपारछड्डा, 24– रह रस, 25–ग्यान



माला, 26– आत्मबोध, 27– व्रत, 28– निरंजन पुराण, 29– गोरख वचन, 30– इंद्र देवता, 31– मूल गर्भावली, 32– खाणी वाणी, 33– गोरखसत, 34– अष्टामुद्रा, 35– चौबीस सिध, 36– षडक्षर, 37– पंच अग्नि, 38– अष्ट चक्र, 39– अष्टक, 40– काफिर बोध।

नाथ संप्रदाय में प्रमुख कवियों के नाम हैं –

चौरंगी नाथ

गोपी चंद

भरथरी

इस संप्रदाय का प्रमुख नारा है 'अलख निरंजन' योगी यही आवाज लगा कर भिक्षा मांगते हैं। एक और कहावत बहुत प्रसिद्ध है –' चेत मछंदर गोरख आया '

इसके पीछे एक कहानी है – राजा भर्तृहरि के वैरागी जीवन के पूर्व का प्रसंग है। रानी पिंगला के गूढ़ प्रेम में रंगे हुए राजा भर्तृहरि का प्रेम विश्वास भ्रम प्रकट होता है। जब राजा ने किसी महात्मा का दिया अमरफल लेकर घूमता फिरता है और रानी पिंगला का सौंदर्य अमर रहे, यह सोच कर फल उसे भेंट कर देता है, लेकिन रानी पिंगला भतृहरि के अलावा किसी से प्रेम करती थी। इस सत्य को समझाने के लिए गुरू मत्स्येंद्रनाथ ने राजा के अश्वपाल का भेष बदलकर रानी को प्रिय होने का नाटक रचा। रानी उसके प्रेम के वशीभूत हो गई और उसने वह अमरफल उसे ( मत्स्येंद्रनाथ) को दे दिया। इस नाटकीय भूमिका में जब लोलुप हो जाते हैं,तब शिष्य गोरखनाथ उनके सामने प्रकट हो जाते हैं और बोल उठते हैं –'चेत मछंदर गोरख आया'

और इस तरह संसार के मायाजाल से विमुख होकर भतृहरि को वैराग्य के मार्ग पर प्रेरित किया। तब से ये कथा योगिए गा गाकर हर घर से भिक्षा मांगने जाते हैं।

गोरखनाथ संप्रदाय सामाजिक जागरुकता के लिए सतत सजग है। मनुष्य जीवन की सार्थकता को समझाते ये जोगी हमारी लोक संस्कृति का अंग है। उनका मानना है कि संसारी जीव समाज में रहते हुए परब्रह्म परमात्मा का निरंतर ध्यान, चिंतन,स्मरण,मनन, करते हुए, ईश्वर के साथ रह सकता है।

**हसिबा षेलिबा धरिबा ध्यान, अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियान।**
**हसै लै न करै मन भंग,ते निहचल नाथ के संग।**

वाणी संयम के लिए लिखते हैं –

**सबदहि ताला सबदलह कूंची, सबदलह सबद जगाया।**
**सबदलह सबद सूं परचा हुआ, सबदलह सबद समाया।**

गुरू गोरखनाथ कहते हैं –जीव और ब्रह्म का एक ही साथ निवास है, इसलिए जीव हत्या कर रक्त मांस का सेवन मत करो।

**जीव सीव संगे बासा,बधि न पाइबा रूध्र मासा।**
**हंसघात न करिबा गोतं,कथंत गोरज निहारि पोत।**

इस तरह इन गोरखपंथी योगीजनों का समाज पर अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रभाव है,ये जीवन की रहस्यमयता का आवरण हटा कर,उसे सुगम बना देते हैं। कुंभ मेलों आदि में इनके पांडाल सजाए जाते हैं, ये अपने गीत भजनों द्वारा लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ –


1 – बलदेव उपाध्यायरू भारतीय दर्शन

2 –आचार्य रामचंद्र शुक्लरू हिंदी साहित्य का इतिहास

3 – हिंदी साहित्यरू उद्‌भव और विकास – आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

4 – गोरखबानी, संपादक – डा. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल

5 – नाथ संप्रदायरू आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

6 – गोरखनाथ एवं उनकी परंपरा का साहित्य ––––डा. दिवाकर पांडेय

7 – भारतीय संत परंपरा और समाजरू रांगेय राघव




# प्रभु श्री राम की अलौकिक वंशगाथा

जब भी राम कथा की बात चलती है – एक कहावत हर व्यक्ति के मुंह में ही रहती है –

**रघुकुल रीत सदा चलि आई।**
**प्राण जाए पर वचन न जाई।**

राम के मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप की व्याख्या बिना रघुकुल की चर्चा के पूरी नहीं हो सकती। उनके पूर्वज इतने महान और दिव्य गुणों की खान थे कि – उनके कृतित्व आज तक हर भारतीय जनमानस की जुबान पर हैं।

रघुवंश की महिमा अपरंपार है,इस कुल में एक से बढ़कर एक तपस्वी, मनस्वी और उदारचेत्ता राजा हुए हैं, जिन्होंने लोकहित में अपनी काया का उत्सर्ग करना श्रेयस्कर समझा।

धनुष भंग प्रसंग में लक्ष्मण कहते हैं –

**कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।**
**नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान।**

**रघुबंसिन्ह महुं जहं कहु होई।**
**तेहिं समाज अस कहइ न कोई।**

उनकी कहानी में उनके वंश – परिपाटी का उल्लेख महत्वपूर्ण है। यह संपूर्ण कथा सूर्यवंशी राजाओं का है, जिन्होंने राज्य की सेवा की, धरती को माता समझा, कभी इसे भोग और विलास की वस्तु नहीं समझा।

वाल्मीकि रामायण के बाल कांड के सर्ग 59 से 72 में ब्रह्मा से भगवान राम तक के वंश का पूर्ण विवरण विस्तार से दिया गया है। जो संक्षेप में इस प्रकार से है।

पुराणों और इतिहासकारों के अनुसार आदि रूप ब्रह्मा जी से मरीचि का जन्म हुआ। मरीचि के पुत्र कश्यप हुये। कश्यप के विवस्वान और विवस्वान के वैवस्वतमनु हुये। वैवस्वतमनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे । इसी इक्ष्वाकु ने अयोध्या को अपनी

राजधानी बनाया और इस प्रकार इक्ष्वाकु कुल की स्थापना की। इक्ष्वाकु के पुत्र कुक्षि हुये। कुक्षि के पुत्र का नाम विकुक्षि था। विकुक्षि के पुत्र बाण और बाण के पुत्र अनरण्य हुये। अनरण्य से पृथु और पृथु और पृथु से त्रिशंकु का जन्म हुआ।

त्रिशंकु की कथा बहुत प्रचलित और रोचक है ।जिसमें वर्णन आता है कि– सूर्य वंश के राजा पृथु के पुत्र सत्यव्रत के रूप में जन्मे राजा त्रिशंकु ।राजा सत्यव्रत जब वृद्ध होने लगे तो उन्हे राज–पाट त्याग कर अपने पुत्र हरिश्चंद्र को अयोध्या का राजा घोषित कर दिया। राजा सत्यव्रत एक धार्मिक पुरुष थे इसलिए उनकी आत्मा स्वर्ग के योग्य थी परंतु उनकी इच्छा सशरीर स्वर्ग जाने की थी। इस इच्छा की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने गुरु ऋषि वशिष्ठ को आवश्यक यज्ञ करने की प्रार्थना की। ऋषि वशिष्ठ ने यज्ञ करने से यह समझते हुये मना कर दिया कि सशरीर स्वर्ग प्रवेश प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। सत्यव्रत अपनी जिद पर अड़े रहे और इच्छा की पूर्ति के लिए ऋषि वशिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र शक्ति को आवश्यक यज्ञ करने के लिए धन एवं प्रसिद्धि का लालच दिया। सत्यव्रत के इस दुस्साहस को बहुत समझाने पर भी, जब वो नहीं माने तो, शक्ति को क्रोधित कर दिया और शक्ति ने सत्यव्रत को त्रिशंकु होने का श्राप दे दिया। त्रिशंकु को राज्य छोड़ कर वन भटकने के लिए मजबूर होना पड़ा।

वन में भटकते हुये त्रिशंकु की भेंट ऋषि विश्वामित्र से हुई जिनसे उसने अपनी परेशानी बताई। ऋषि विश्वामित्र, जो ऋषि वशिष्ठ से प्रतिद्वंद्ता रखते थे, त्रिशंकु की प्रार्थना स्वीकार कर ली एवं उसे सशरीर स्वर्ग पहुंचाने के लिए आवश्यक यज्ञ शुरू कर दिया। यज्ञ के प्रभाव से त्रिशंकु स्वर्ग की ओर उठने लगे। इस अप्राकृतिक घटना से स्वर्ग में खलबली मच गयी। सभी लोग दौड़े– दौड़े इंद्र के पास गए। भगवान इन्द्र के नेतृत्व में देवताओं ने त्रिशंकु को स्वर्ग प्रवेश करने से रोक दिया एवं उसे वापस पृथ्वी की ओर फेंक दिया। इस बात से क्रोधित ऋषि विश्वामित्र ने अपनी शक्तियों का प्रयोग कर के त्रिशंकु का गिरना रोक दिया जिससे त्रिशंकु बीच में लटक गए।

लटके त्रिशंकु ने विश्वामित्र से सहायता की प्रार्थना की। विश्वामित्र ने अपनी शक्तियों का प्रयोग कर बीच में ही एक नया स्वर्ग बना दिया और त्रिशंकु को श्राप से मुक्त करते हुये इस नए स्वर्ग में भेज दिया। त्रिशंकु, जो वापस सत्यव्रत बन गया था, को नए स्वर्ग का इन्द्र बनाने के लिए विश्वामित्र ने तपस्या प्रारम्भ की। इस तपस्या से चिंतित देवताओं ने विश्वामित्र को समझाया कि उन्होने सशरीर स्वर्ग प्रवेश की



अप्राकृतिक घटना को रोकने के लिए त्रिशंकु के स्वर्ग प्रवेश से रोका था। विश्वामित्र देवताओं के तर्क से सहमत हुये परंतु अब उनके सामने अपने वचन को पूरा करने कि दुविधा थी। विश्वामित्र ने देवताओं से समझौता किया कि वो अपनी तपस्या रोक देंगे और देवता सत्यव्रत को नए स्वर्ग में रहने देंगे, एवं सत्यव्रत इन्द्र की आज्ञा का पालन करेगा।

यह त्रिशंकु की कहानी है जो पृथ्वी एवं स्वर्ग के मध्य अपने लटके हुये स्वर्ग में है। भारत में त्रिशंकु शब्द का प्रयोग ऐसी ही परिस्थितियों के लिए किया जाता है। और यह कहानी इतनी लोकप्रिय हुई कि – कहावत बन गई।

त्रिशंकु के पुत्र धुन्धुमार हुये। धुन्धुमार के पुत्र का नाम युवनाश्व था। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुये जो प्रथम् राजा थे जिन्होंने पूरी पृथ्वी पर विजय पाई थी। ये दिग्विजय कर संपूर्ण पृत्वी के भूपाल बने।

मान्धाता से सुसन्धि का जन्म हुआ। सुसन्धि के दो पुत्र हुये – ध्रुवसन्धि एवं प्रसेनजित। ध्रुवसन्धि के पुत्र भरत हुये। भरत के पुत्र असित हुये और असित के पुत्र सगर हुए,ये वही सगर हैं, जिन्हें भागीरथ के पूर्वज के लिए जाना जाता है, जिनको तारने के लिए वे गंगा को पृथ्वी पर लाए थे।

सगर के पुत्र का नाम असमंज था। असमंज के पुत्र अंशुमान तथा अंशुमान के पुत्र दिलीप हुए जो अपनी गौ सेवा के लिए विश्व विख्यात हुए। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए , इन्हीं भगीरथ ने अपनी तपोबल से गंगा को पृथ्वी पर लाया। भगीरथ के पुत्र ककुत्स्थ और ककुत्स्थ के पुत्र रघु हुए। रघु के समान इस धरती पर कोई पराक्रमी राजा नहीं हुआ,अत्यंत तेजस्वी और पराक्रमी नरेश होने के कारण उनके बाद इस वंश का नाम रघुवंश हो गया।

महाराज रघु के बारे में कहा जाता है कि राजा दिलीप धनवान, गुणवान, बुद्धिमान और बलवान है, साथ ही धर्मपरायण भी थे। बस कमी थी तो यह कि, वो सभी वैभव से,प्रकार से सम्पन्न हैं परंतु उन्हें कोई संतान नहीं थी। संतान प्राप्ति का आशीर्वाद पाने के लिए दिलीप को गोमाता नंदिनी की सेवा करने के लिए कहा गया । एक बार एक तपस्वी राजा के अतिथि बन कर आए। उनके मन की कामना को भांप कर राजा अपनी रानी को उस तपस्वी के आश्रम में छोड़ आए। तपस्वी ने अपनी गलती मान कर बड़ा पश्चात्ताप किया और भक्तिपूर्वक रानी के चरण–स्पर्श कर

राजमहल में भिजवा दिया।

महाराजा रघु ने एक बार दान में दी हुई चीज को वापस लेने से इनकार कर दिया। इस पर रानी ने राजा से निवेदन किया कि इससे अच्छा यह है कि आप मेरा सिर काट लें। इस पर रघु ने सचमुच रानी का सिर काटने के लिए तलवार चला दी। किन्तु यह क्या! तलवार सिर से स्पर्श करते ही फूल बन कर बिखर गई। देवताओं ने उस राज– दम्पति की निष्ठा और कर्त्तव्य परायणता पर प्रसन्न होकर उन पर फूलों की वृष्टि करने लगे। महाराजा रघु ने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी और जब धन न रहा तब कुबेर के पास गये। कुबेर ने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया और उनकी इच्छा के अनुसार धन देकर विदा किया। रघु ने सारा धन याचकों में बाँट दिया। रघु के पराक्रम का वर्णन कालिदास ने विस्तारपूर्वक अपने ग्रन्थ 'रघुवंश' में किया है। अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को चुराने पर उन्होंने इन्द्र से युद्ध किया और उसे छुड़ाकर लाया था। उन्होंने विश्वजीत यज्ञ सम्पन्न करके अपना सारा धन दान कर दिया था। जब उनके पास कुछ भी धन नहीं रहा, तो एक दिन ऋषिपुत्र कौत्स ने आकर उनसे 14 करोड़ स्वर्ण मुद्राएं मांगी ताकि वे अपनी गुरु दक्षिणा दे सकें। रघु ने इस ब्राह्मण को संतुष्ट करने के लिए कुबेर पर चढाई करने का मन बनाया। यह सूचना पाकर कुबेर घबराया और खुद ही उनका खजाना भर दिया। रघु ने सारा खजाना ब्राह्मण के हवाले कर दिया परंतु उस ब्राह्मणपुत्र ने केवल 14 करोड़ मुद्राएं ही स्वीकारी।

रघु के पुत्र प्रवृद्ध हुये जो एक शाप के कारण राक्षस हो गये थे, इनका दूसरा नाम कल्माषपाद था। प्रवृद्ध के पुत्र शंखण और शंखण के पुत्र सुदर्शन थे। सुदर्शन के पुत्र का नाम अग्निवर्ण था। अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्रग और शीघ्रग के पुत्र मरु हुये। मरु के पुत्र प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक के पुत्र अम्बरीष हुए। इनकी कथा भी बहुत जनप्रिय है। राजा अम्बरीष के घर में लक्ष्मी स्वयं इनके घर में इनकी पुत्री के रूप में अवतरित हुई। इनका नाम पड़ा–श्रीमती। श्रीमती बचपन से ही विष्णु को अपना पति मान कर इनकी आराधना करने लगी। अपने मोहक रूप और सौन्दर्य के लिए वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी। श्रीमती का जन्म एक विशेष उद्देश्य को लेकर हुआ था। देवर्षि नारद को एक बार यह गर्व हो गया कि मैं मोह–माया से परे हूँ और उन्होंने कामदेव को जीत लिया है जबकि यह सब भगवान शिव की कृपा का फल था। मुझ पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। एक बार नारद ने अपने इस गर्व की चर्चा पर्वत नामक एक ऋषि से भी की। एक बार घूमते–घूमते नारद और पर्वत दोनों ऋषि राजा अम्बरीष के





यहाँ पधारे। राजा ने उनका यथोचित आदर–सत्कार किया और अपनी पुत्री श्रीमती को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। जब श्रीमती ने आशीर्वाद लेने के लिए दोनों ऋषियों को प्रणाम किया, तभी उन दोनों पर विष्णु की माया छा गई। वे दोनों श्रीमती का सौन्दर्य देख कर सारा ज्ञान भूल गये और उससे विवाह करने को दोनों आपस में लड़ने लगे।

राजा अम्बरीष को ऋषियों के इस व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य और दुख हुआ। श्रीमती के अनुरोध पर अम्बरीष ने उसके विवाह के लिए स्वयंवर की घोषणा कर दी। स्वयंवर की घोषणा सुन कर दोनों ऋषि वहाँ से चले गये। स्वर्ग में वापस जाकर भी नारद श्रीमती को भूल न सके और उससे विवाह करने के लिए विष्णु से अपना सुन्दर रूप देने की प्रार्थना की। इधर पर्वत ईर्ष्यावश विष्णु से यह अनुरोध करने आया कि स्वयंवर में जाने के लिए वे नारद को बन्दर का मुख दे दें। विष्णु ने पर्वत की यह बात मान ली और उन्होंने नारद को प्रभु विष्णु उन्हें हरि (बंदर) का रूप प्रदान कर देते हैं। नारद उत्साहित होकर स्वयंवर में पहुंचते हैं। सभी राजा उन्हें देखकर हंसने लगते हैं। नारद को कुछ समझ में नही आता है। सारे राजा नारद का उपहास करते हैं। नारद दर्पण में स्वयं का बंदर रूप देखकर क्रोधित हो जाते हैं। वे प्रभु विष्णु को श्राप देते हैं कि आपको भी धरती पर आना पड़ेगा और आप भी महिला के लिए वन–वन घूमेंगे।

इसका वर्णन रामचरित मानस में इस प्रकार से है –

**आनि देखाई नारदहिं भूपति राजकुमारि।**
**कहहु नाथ गुन दोष सब एहि कर हृदय बिचारि।**

**करौं जाइ सोइ जतन बिचारी।**
**जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी।**
**हरि सन मांगौ सुंदरताई।**
**होइहि जात गहरु अति भाई।**
**आपन रूप देहु प्रभु मोहीं।**
**आन भांति नहिं पावौं ओही।**
**जेहि समाज बैठे मुनि जाई।**
**हृदय रूप अहिमिति अधिकाई।**
**मर्कट बदन भयंकर देही।**
**देखत हृदय भा क्रोध भा तेही।**



अम्बरीष के पुत्र का नाम नहुष था। नहुष के पुत्र ययाति और ययाति के पुत्र नाभाग हुये। पुराणों और इतिहासकारों के अनुसार, ययाति चन्द्रवंशी वंश के राजा नहुष के छः पुत्रों याति, ययाति, सयाति, अयाति, वियाति तथा कृति में से एक थे। याति राज्य, अर्थ आदि से विरक्त रहते थे इसलिये राजा नहुष ने अपने द्वितीय पुत्र ययाति का राज्याभिषेक करवा दिया। ययाति का विवाह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ हुआ। देवयानी के साथ उनकी सखी शर्मिष्ठा भी ययाति के भवन में रहने लगे। ययाति ने शुक्राचार्य से प्रतिज्ञा की थी की वे देवयानी से भिन्न किसी और नारी से शारीरिक सम्बन्ध नहीं बनाएंगे। एक बार शर्मिष्ठा ने कामुक होकर ययाति को मैथुन प्रस्ताव दिया। शर्मिष्ठा की सौंदर्य से मोहित ययाति ने उससे संबंध बनाया। इस तरह देवयानी से छुपाकर शर्मिष्ठा एवं ययाति ने तीन वर्ष बीता दिए। उनके गर्भ से तीन पुत्र लाभ मिलने के बाद जब देवयानी को यह पता चला तो उसने शुक्र को सब बता दिया। शुक्र ने ययाति को वचनभंग के कारण शुक्रहीन वृद्ध होने का श्राप दिया।

ययाति की दो पत्नियाँ थीं। शर्मिष्ठा के तीन और देवयानी के दो पुत्र हुए। ययाति ने अपनी वृद्धावस्था अपने पुत्रों को देकर उनका यौवन प्राप्त करना चाहा, पर पुरू को छोड़कर और कोई पुत्र इस पर सहमत नहीं हुआ। पुत्रों में पुरू सबसे छोटा था, पर पिता ने इसी को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया और स्वयं एक सहस्र वर्ष तक युवा रहकर शारीरिक सुख भोगते रहे।

तदनंतर पुरू को बुलाकर ययाति ने कहा – 'इतने दिनों तक सुख भोगने पर भी मुझे तृप्ति नहीं हुई। तुम अपना यौवन लो, मैं अब वाणप्रस्थ आश्रम में रहकर तपस्या करूँगा।' फिर घोर तपस्या करके ययाति स्वर्ग पहुँचे, परंतु थोड़े ही दिनों बाद इंद्र के शाप से स्वर्गभ्रष्ट हो गए। अंतरिक्ष पथ से पृथ्वी को लौटते समय इन्हें अपने दौहित्र, अष्ट, शिवि आदि मिले और इनकी विपत्ति देखकर सभी ने अपने अपने पुण्य के बल से इन्हें फिर स्वर्ग लौटा दिया। इन लोगों की सहायता से ही ययाति को अंत में मुक्ति प्राप्त हुई।

नाभाग के पुत्र का नाम अज था। दशरथ के पिता सूर्य राजवंश के 38 वें राजा थे। वे सरयू नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित कौशल राज्य के राजा थे। सरयू नदी के उत्तरी किनारे स्थित कौशल राज्य का राजा सूर्य वंश का ही कोई दूसरा व्यक्ति था। अज की पत्नी और दशरथ की माता इंदुमती वास्तव में एक अप्सरा थीं लेकिन



किसी शापवश धरती पर साधारण स्त्री वेश में रहने को विवश थीं। इसी रूप में इंदुमती का विवाह अज से हो गया और दशरथ पैदा हुए। एक दिन राजा अज इन्दुमती के साथ उद्यान में घूम रहे थे। तभी आकाश मार्ग से नारद जी जा रहे थे। अचानक उनकी वीणा से लिपटी देवलोक की पुष्पमाला हवा में उड़ती हुई वहाँ आई और इन्दुमती के कण्ठ में जा पड़ी। इससे इन्दुमती की उसी घड़ी मृत्यु हो गई । वह अपने शाप से मुक्त हो इंद्रलोक चली गई। तब अज पत्नी इंदुमती की मृत्यु देख शोक से रोने लगे। तभी नारद वहाँ प्रकट हुए तथा राजा को उन्होंने इन्दुमती के पूर्व जन्म की कहानी सुनाई। एक बार तृणविन्दु ऋषि की तपस्या भंग करने के लिए इंद्र ने हरिणी नामक अप्सरा को भेजा था। इस पर ऋषि ने हरिणी को मानवी जन्म का शाप दे दिया। हरिणी के अनुरोध करने पर ऋषि ने शाप से छूटने का उपाय भी बता दिया। स्वर्ग की पुष्पमाला के उसके कण्ठ में पड़ते ही इन्दुमती को सुरबाला होने की याद हो आई। इसीलिए वह देवलोक वापस चली गई।

अज इंदुमती से बहुत प्रेम करते थे और बहुत कोशिशों के बाद भी जब वे इंदुमती तक पहुंचने का कोई रास्ता नहीं समझ सके तो स्वेच्छा से अपने प्राण हर लिए।

उनकी मौत के वक्त दशरथ मात्र 8 माह के थे। कौशल के राजगुरु और राज पुरोहित वशिष्ठ के आदेश से गुरु मरुधन्वा ने दशरथ का पालन–पोषण किया और अज के राज में सबसे बुद्धिमान मंत्री सुमंत्र ने दशरथ के प्रतीक रूप में राज्य का कार्यभार संभाला. 18 वर्ष की उम्र में दशरथ ने कौशल जिसकी राजधानी अयोध्या थी, का भार संभाल लिया और दक्षिणी कौशल के राजा बन गए। वे उत्तरी कौशल को भी इसी में मिलाना चाहते थे. उत्तरी कौशल के राजा की एक बेटी थी कौशल्या. दशरथ ने उत्तरी कौशल के राजा से उनकी बेटी कौशल्या से विवाह करने का प्रस्ताव रखा। उत्तरी कौशल के राजा ने भी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस तरह दशरथ–कौशल्या के विवाह के साथ दशरथ कौशल नरेश बन गए।

उन्हीं से युगावतार मर्यादा पुरुषोत्तम लोकनायक प्रभु श्री राम का जन्म हुआ।

**भए प्रगट कृपाला दीन दयाला।**
**कौशल्या हितकारी।**
**हर्षित महतारी मुनि मन हारी। अद्‌भुत रूप बिचारी।**

# भूखी – प्यासी माटी का दर्द
# (विश्व मजदूर दिवस पर विशेष)

शारीरिक श्रम को तप माना गया है, जिस तरह आत्मा का विषय आनंद है, वैसे ही शरीर का आनंद श्रम है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कर्म बंधन में संयुक्त है, इसी से उसकी आजीविका भी चलती है और सामाजिक पहचान के साथ सम्मान भी मिलता है।

गीता में निष्काम कर्मों को ही योग माना गया है। रामचरितमानस में भी लिखा है –

**करम प्रधान विश्व रचि राखा।**

कर्मों में भी अनेक प्रकार हैं –

बौद्धिक के अंतर्गत कलात्मक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, लेखकीय, संभाषण, अध्यापन, शोध आदि आते हैं। शारीरिक कार्य में खेती, कल पुर्जों वाले कार्य, बढ़ईगीरी,माली, बागवानी, रिक्शा चालक, ईंटा पथौनी, बागानों में काम, कुलीगिरी, बेलदारी, घर बनाने वाले मिस्त्री, मालीगिरी आदि से लेकर सफाई कर्मी तक इसमें शामिल हैं।

कृषि के कार्य को उत्तम माना गया है। इसमें अन्नदाता किसान सबसे महत्वपूर्ण है। भोजन के बिना कुछ भी संभव नहीं। हमारे भारतीय संस्कति में इन शारीरिक श्रम वाले कार्यो को विश्वकर्मा भगवान की सेवा मानी गई है।लोग इन श्रमजीवियों का सम्मान करते थे। आदमी की तो बात अलग है, पशुओं में भी बैल जो की हमारे कृषि– जीवन की धूरी माना जाता है। उसकी भी पूजा के दिन हर प्रांतों में अलग–अलग अवसरों पर निर्धारित हैं। भारतीय समाज में सभी प्रकार के कार्य निष्पादन करने वाले को,समाज का घटक माना गया है, उसमें कोई छोटा – बड़ा नहीं। काम तो काम है।

हमारे लोकगीतों में भी विवाह के समय सबकी आवश्यकता और महत्ता को गीतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

**अरे अरे कोहरा**
**अरे अरे कोहरा**



**कलशा ले आव,**
**तोहरे कलशवा ए कोहरा**
**होइहें बियाह।**

**अरे अरे डोमवा**
**अरे अरे डोमवा।**
**डालवा ले आव**
**तोहरे डालवा ए डोमवा**
**होइहें बियाह।**

**अरे अरे पंडित**
**अरे अरे पंडित**
**पोथिया ले आव**
**तोहरे पोथियवा ऐ पंडित**
**होईहे बियाह।**

हमारे यहां श्रम को ना ही छोटा – बड़ा माना गया ना ही कौशल को हीन समझा गया।समाज में हर वर्ग और कार्य की आवश्यकता होती है। सोचिए पंखा और पत्तल बनाने वाले कलाकार कितना महत्व रखते हैं। ये प्राकृतिक संसाधनों के प्रदाता हैं। इन रिश्तों को गीतों, अनुष्ठानों, रीति–रिवाजों में सहेजा गया है।

धीरे–धीरे मशीनीकरण,उद्योगीकारण, मल्टीनेशनल, आदि के कारण श्रमिक वर्ग गांवों से शहरों की ओर बढ़े। बहुत पहले कोलकाता कमाने की एक होड़ थी। फिर मुम्बई में ट्रेनें भर– भर जाने लगे। आज पंजाब, बंगलौर, दिल्ली कमाने का समय है। इनको यहां अनेक तरह का संघर्ष भी करना पड़ता है। पर मजदूरी किए बिना , अर्थोपार्जन का कोई रास्ता भी नहीं था। बहुत से राज्यों में शिक्षा और संपत्ति के कारण श्रमिक वर्ग नहीं मिल पा रहे हैं। उन जगहों पर इनकी संख्या दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। केवल देश ही नहीं दुबई जैसे देशों में कमाने का प्रचलन भी जोरों पर है।ये बहुत जल्दी वहां की भाषा,भोजन, जलवायु से समायोजन बना लेते हैं। कहीं कहीं स्थानीय श्रमिकों और बाहरी वालों में मूल्य आदि को लेकर बहुत बवाल भी हो जाता है। परदेशी पत्नियों और प्रेमिकाओं के प्रसंग भी इन्हें उन प्रांतों में रहने में बाधा उत्पन्न करते हैं। इनका चित्रण कवियों, लेखकों ने बहुत विस्तार से अपने साहित्य में किया है।

आज हम जिस 'विश्व मजदूर दिवस' की चर्चा करते हैं – वह विश्व में हर

साल 1 मई को मनाया जाता है। इसे अंतर्राष्ट्रीय श्रमिक दिवस भी कहते हैं। यह एक मई 1886 को अमेरिका में एक आंदोलन से आरंभ हुआ, जिसमें मजदूर 15 घंटे काम करने के बदले 8 घंटे का समय निर्धारित कराना चाहते थे। आंदोलन में गोलियां चलीं, अनेक मजदूरों की मौत हो गई। भारत में यह पहली बार 1923 में तमिलनाडु में मनाया गया, तब से अब तक इसे समूचे देश में मनाया जाता है। पिछले साल इसकी थीम –' सकारात्मक सुरक्षा और स्वास्थ्य संस्कति का निर्माण'। इस दिन का विशेष उद्देश्य इसकी समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट करना है।

मजदूरों के लेकर मानवाधिकार के तहत कठोर नियमों की सूची भी दर्ज की जा चुकी है। अब उनसे कोई बंधुआ की तरह व्यवहार नहीं कर सकता। मुआवजा, चिकित्सा, समय से वेतन, मौलिक अधिकार, जोखिम से बचने के सभी उपाय उपलब्ध रहने होंगे। एंबुलेंस, शुद्ध जल, हवा, संक्रमण से बचने के सभी उपाय मौजूद रहने होंगे। महिला श्रमिकों को गर्भवती होने पर उचित सहुलियत देना होगा। ओवर टाइम का भुगतान नियमानुसार होगा। आज हर तरह से श्रमिकों के शरीर और सम्मान की रक्षा करने के प्रयास जारी हैं। यदि वह स्वतरू गलत व अनुचित प्रसंगों में संबद्ध नहीं है तो, बेहतर है।

कानूनी दृष्टि से भी इनको अनेक सहूलियत दी जाती है और साहित्यकार भी इनकी आवाज को लोगों तक पहुंचाने में कटिबद्ध हैं।

विश्व कहानीकार मुंशी प्रेमचंद ने इनके जीवन के सभी पहलुओं को उकेरने का प्रयास किया है। उनकी दुर्वृत्तियों और मजबूरियों को भी उजागर किया है। घीसू का रूढ़ियों से ग्रसित होना, स्त्रियों के प्रति अनुदारता और मदिरा सेवन ही उसे 'कफन' का पात्र बनाता है। इन सब की जड़ अशिक्षा है।

प्रगतिवादी कवि निराला ने अपनी रचनाओं में इन पात्रों को स्थान देकर अपनी करूणा व्यक्त किया और समाज को भी सोचने को मजबूर किया –

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के
पथ पर।

रामधारी सिंह दिनकर ने मजदूरों की निष्पृहता और परिश्रम को वरेण्य मानते हुए लिखा कि –



**मैं मजदूर**
**मुझे देवों की बस्ती से क्या?**
**अगणित बार धरा पर मैंने स्वर्ग बनाया।**

आधुनिक कवि नरेंद्र अग्रवाल, जमशेदपुर की रचना 'सपना' एक बेलदार की विवशता को कुछ इस तरह बयां किया है –

**इस आलीशान इमारत में**
**दरवाजे से**
**उसे प्रवेश नहीं मिल सकता**
**कपड़े उसके गंदे**
**पांव नंगे और बाल बिखरें हुए।**

**वह अपनी दिली इच्छा को पूरा करता है**
**इमारत के बाहर एक चित्र बना कर**

**एक दरवाजा बनाता है**
**जो खुला है सभी के लिए**
**भीतर उसके आंगन**
**जहां मौजूद हैं बहुत सारे लोग**
**और सबसे आगे की कुर्सी पर**
**बैठा वह सज– धज– कर**
**बेहतरीन कपड़ों में अत्यंत खुश**

**फिर एक पर्दा भी बना देता है**
**चित्र के ऊपर**
**ढ़क कर इस चित्र को**
**हंसते हंसते लौटता है बिस्तर पर**
**अपने सपने से वापस।**

एक और रचना विजय प्रकाश भारद्वाज की है जिसमें आलू निकालने वाले किसान की है।यह फसल भी एक तरह का जुआं है, यदि सही सलामत आ गया तो ठीक,वरना तुरंत सड़ने का डर सदा बना रहता है। एक बार ऐसी ही बारिश बसंत में हो गई और किसान कोसता रहा –

**'साहब' मय परिवार**
**बीनने गया हुआ आलू,**
**लेकिन भाग्य रेख जीवन की**
**चिढ़ी हुई चालू,**
**धन से लुटा किसान**
**मेहनती 'खन' को तरस गया....**

केदारनाथ अग्रवाल की मार्मिक चित्रण देखिए – जब श्रमिक के घर संतान का जन्म हुआ तो सबने अपने – अपने तरीके से क्या सोचा –

**एक हथौड़े वाला घर में और हुआ**
**हाथी सा बलवान**
**जहाजी हाथों वाला और हुआ**
**सूरज सा इंसान**
**तरेरी आंखों वाला और हुआ**
**दादा रहे निहार**
**सलामत लाने वाला और हुआ।**

एक अन्य रचना 'जो शिलाएं तोड़ते हैं ' में कवि लिखते हैं –

**जिंदगी को**
**वो गढ़ेंगे जो शिलाएं तोड़ते हैं।**
**यज्ञ को इस शक्ति श्रम के**
**श्रेष्ठतम मैं मानता हूं।**

**जिंदगी को**
**वो गढ़ेंगे जो खदानें खोदते हैं।**

ज्ञानेंद्र कुमार सूर्य की रचना जिसमें श्रम को वीरता,तपस्या और निर्माण से सराहा गया है –

मैं कर्मवीर/ सूरज की आग में तपा मेरा शरीर/ भुजाओं में शक्ति/ और हाथ में छाले हैं/ कर्म ही मेरी भक्ति/ मैं मेहनतकश मजदूर हूं/ कार्य मेरा निर्माण है।

गीतकार शिवानंद योगी ने बहुत सुंदर चित्रण अपने गीतों में किया है।



# राजभाषा हिंदी की चुनौतियां

हिंदी सर्वमान्य भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है, इसमें कोई दो राय नहीं है। यह समय अतिबौद्धिकता का है, इसलिए सरलता से कोई किसी को स्वीकार नहीं करता, अपनी प्रतिभा की प्रवरता उसमें खोजता है, तुलना करता है। सहज सम्मान पाना आज बहुत कठिन है, या तो कृत्रिम और औपचारिक मान दिया जा रहा है, जिसमें कोई प्रलोभन हो, या फिर बहुत ठोंक ठठा कर हम स्वीकृति दे पाते हैं। ऐसा ही हिंदी के साथ भी है, एक ओर इसके डैने दूर आकाश से होते हुए, सामुद्रिक यात्राओं की दूरी तय कर रहे हैं तो, वहीं कभी अपने घर में अपने अस्तित्व को तलाशती दिखती है हिंदी।

**हिंदी ने अभिव्यक्ति देकर सबको भाषा दान दिया।**
**हर क्षेत्रों में विपुल सार्थक वैश्विकता पहचान दिया।**

राजभाषा हिंदी की संवैधानिकता निम्न प्रकार है –

343– संघ की भाषा (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी। संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी,इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा,जिनके लिए उसका ऐसा आरंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

परंतु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा,संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी,संसद उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात,विधि द्वारा –

(क) अंग्रेजी भाषा का,या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी,जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

344– राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति (1) राष्ट्रपति,इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा,एक आयोग गठित करेगा,जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा,जिसको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

(2) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को –

(क) संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग

(ख) संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बधनों

(ग) अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा,

(घ) संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप में,

इस तरह अनेक अनुच्छेद द्वारा इसे राजभाषा का दर्जा दिया गया। साथ ही यह भी कहा गया कि –

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए,उसका विकास करे,जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

भारत में अनेक भाषाएं हैं, कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा से वैमनस्य नहीं



रखती,सब के अपने साहित्य और महत्ता हैं। इनमें परस्पर प्रतिद्वंदिता भी नहीं है। इसमें कोई दो राय नहीं कि स्वतन्त्रता संग्राम की युद्ध नीति की भाषा अंग्रेजी नहीं थी, उसका श्रेय हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को जाता है। हमारे देश को एकाकार करने में हमारी संस्कृति की अग्रणी भूमिका है, जो चारों दिशाओं में समान रूप से फल– फूल रही है। भाषा सांस्कृतिक गतिमयता को प्रवाह देती है और इसमें हिंदी का वर्चस्व आज अत्यधिक है।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भारत में नागरी लिपि और हिंदी के प्रचार को राष्ट्रीयता मानते थे। भारत के लिए हिंदी की अनिवार्यता को व्यक्त करते हुए,, विनोबा भावे ने कहा था ––––'यदि मैंने हिंदी का सहारा नहीं लिया होता तो, काश्मीर से कन्याकुमारी और असम से केरल तक गांवों–कस्बों में जाकर भूदान और ग्रामदान का संदेश जन–जन तक नहीं पहुंचा पाता।'

इसी तथ्य का अनुमोदन करते हुए डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था –

' राष्ट्र भाषा के माध्यम से ही राष्ट्र– हित एवं निर्माण संभव है।'

हिंदी के विषय में अलग–अलग विद्वानों ने अपने –अपने उद्‌गार देकर,उसकी प्रभुता स्वीकार की है –

महान राष्ट्रकवि सुब्रमण्यम भारती ने कहा है कि ––' राष्ट्र की एकता को यदि बना कर रखा जा सकता है तो,उसका माध्यम हिंदी ही है। किसी दूसरी भाषा को जानना सम्मान की बात है, लेकिन दूसरी भाषा को अपनी राष्ट्रभाषा के बराबर दर्जा देना शर्म की बात है।'

महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहा कि ––––'हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।'

काव्य जगत में भी कवियों ने इसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए, रचनाएं लिखीं हैं –

गोपाल सिंह नेपाली ––

**बढ़ने दो इसे सदा आगे।**
**हिंदी जन– जन की गंगा है।**
**यह माध्यम उस स्वाधीन देश का।**
**जिसकी ध्वजा तिरंगा है।**

**हो कान पवित्र इसी सुर में।**
**इसमें हर हृदय मुखरने दो।**
**हिंदी है भारत की बोली।**
**तो अपने–आप पनपने दो।**

पं. रामेश्वर दयाल दूबे ने लिखा है –

**भारत जननी एक हृदय हो।**
**एक राष्ट्र भाषा हिंदी में।**
**कोटि– कोटि जनता की जय हो।**
**स्नेह सिक्त मानस की वाणी।**
**गूंजे गिरा यही कल्याणी।**

उच्चाधिकारियों, राजभाषा अधिकारियों और हिंदी अधिकारियों को शासकीय कामकाज में हिंदी का प्रयोग करना चाहिए,तथा अन्य कर्मचारियों को भी प्रेरित करें। इन्हें समय–समय पर संवैधानिक एवं विधिक व्यवस्था तथा नियमों, अधिनियमों, निर्देशों से भी अवगत कराते रहना चाहिए।इसी प्रकार उच्चादेशों के माध्यम से हिंदी में कार्य करने के प्रावधान का अनुपालन करने के लिए यथोचित कार्यवाही करते रहें।इस हेतु निम्न विंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है ––––––

1– स्वयं को हिंदी में कार्य करने के लिए मानसिक रूप से तैयार रखना।

2– तत्पश्चात इसका निश्चय कर लीजिए कि धीरे–धीरे हिंदी को सरकारी कार्यो का माध्यम बनाना है।

3– हिंदी के प्रचलित शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग करें।

4– जिस शब्द की हिंदी तत्काल नहीं सूझ रही हो उसका किसी अन्य भाषा में नियमित बोले जाने वाले शब्द को देवनागरी लिपि में प्रयोग कीजिए।

5– जैसे अंग्रेजी में टिप्पणी,आलेखन,पत्र व्यवहार करते हैं,उसी तरह हिंदी में भी करें।

6– कार्यालय में प्रशासनिक शब्दकोश का होना आवश्यक है, जिससे हिंदी के कार्यो में सुगमता मिले।



7– प्रतिदिन व्यवहार की तरह सरकारी कार्यालयों में भी हिंदी का प्रयोग शिष्टता के साथ कीजिए।

8– धीरे–धीरे यह प्रक्रिया जोर पकड़ लेगी और इसमें आपको सुगमता का अनुभव होगा।

9– समय–समय पर कार्यालयों में कार्यशालाओं, गोष्ठियों, बैठकों और सम्मेलनों का आयोजन करते रहें।कार्यालय का उद्देश्य काम काज में प्रयोग होने वाली व्यवहारिक हिंदी का ज्ञान कराना होना चाहिए।

10– बैठक और आयोजन इतने रूचिकर हों कि सभी को आनंद की अनुभूति हो, ऊबाऊ नहीं लगना चाहिए।

11– राजभाषा संबंधी पत्र– पत्रिकाओं का प्रकाशन होते रहना चाहिए।

**हिंदी की वैश्विक प्रसिद्धि के लिए महत्वपूर्ण घटक निम्न हैं –**

1– हिंदी भाषा– भाषी प्रमुख देश

2– विदेश में हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था

3– प्रवासी भारतीयों द्वारा हिंदी का प्रयोग एवं प्रचार

4– दूतावासों का योगदान

5– अनुवाद कार्य

6– हिंदी दिवस समारोह व कवि सम्मेलन का आयोजन

7– विश्व हिंदी सम्मेलन

8– विदेश में स्थित हिंदी संस्थाओं तथा विदेशों से प्रकाशित हिंदी पत्र–पत्रिकाओं का योगदान

9– हिंदी फिल्मों तथा भारतीय गीत – संगीत का प्रचलन

10– पुरस्कार व सम्मान योजना

# दिनकर को याद करते हुए

छायावाद के ढलान का युग और बिहार की ओजस्विनी भूमि का तपस्वी स्वर जो शब्दों में हुंकार बन कर उतरा, स्वप्निल दुनिया को त्याग साहित्य राष्ट्रहित में कुछ यथार्थ पुरूषार्थ भरना चाहता था, जिसके लिए पौराणिक पात्रों के बिंब लेकर दिनकर जी ने महान कृतियों का सृजन कर, समाज में व्याप्त विषमताओं, हीनभावना, कापुरूषता को तोड़ कर , उस स्वतंत्रता को उजागर किया, जिसमें वीर धनुर्धर की पुनरावृत्ति हो।

**रे रोक युधिष्ठिर को न यहां,**
**जाने दे उनको स्वर्ग धीर**
**पर फिरा हमें गांडीव गदा**
**लौटा दे अर्जुन भीम वीर –**

**क्षमा शोभती उस भुजंग को**
**जिसके पास गरल हो।**
**उसको क्या जो दंतहीन विषरहित विनीत सरल हो।**

(कुरूक्षेत्र)

राष्ट्रीयता उनके रग– रग में समाई हुई थी। उनकी रचनाओं में उनकी परिवेश की गंध के साथ धरती पुत्रों के प्रति भी संवेदनशील मन है। उनका देश उनके परिवेश की धरा पर उगता सूर्य है। उनकी देशभक्ति उनके साहित्य में बारंबार प्रकट होती है। उसमें समाज का वह उपेक्षित वर्ग भी चित्रित है,जो समाज विकास की आवश्यकता ही नहीं, आधार है। दिनकर के काव्य संसार में हृदयस्पर्शी रचनाएं भी हैं,जो देश के यशोगाथा को लिखते हुए, भारतीय समाज का व्यापक परिदृश्य उकेर कर रख देती हैं। जिसमें समाज के सुखद – दुखद दोनों पक्षों से आत्मीय स्तर पर जुड़ कर पाठक अपना सीधा तादात्मय स्थापित कर लेता है, जिससे उसमें देशप्रेम की भावना उद्वेलित होती है।

सन् 1928–1929 के आसपास का दशक स्वतंत्रता संग्राम के लिए



उद्धत समाज का काल था, जिसमें पराधीन देश को जीवन, जागरण,प्रेरणा, और अदम्य साहस, सओज साहस की आवश्यकता थी, जिसमें दिनकर का प्रादुर्भाव हुआ। और छायावादी क्षितिज पर एक क्रांतिकारी दिनकर उदित हुआ। लिहाजा साहित्य में साहित्य में यह समय सुकुमार, अमूर्त विषयों का नहीं, स्वाधीनता का भाव जगाने वाली, पराधीनता, शोषणकारी वृत्तियों का उन्मूलन, उपनिवेशवाद के विरोध में सच बोलने वाले कलमकारों का था। जागरण का मंत्र फूंकने का था।

वैचारिकी पर केंद्रित विचार को अपनी भाषा – शैली का चयन करना था। जिसमें गुलामी से लड़ने का हौसला हो, तभी मुक्ति का स्वर निनादित किया जा सक ता था।इस कठिन समय में हिंदी साहित्य में ओज वाणी,श्रृजु भाषा – शिल्प द्वारा देश भाव भरना, ऊंघती लोक – चेतना को जगाना,उसे प्राणार्पण के लिए उत्साहित करना,यह दुरूह कार्य दिनकर जी के हाथों संपादित हुआ। उनकी सशक्त लेखनी ने जनता को अनीतियों से जूझने के योग्य बनाया। लोगों ने दीनता की जगह ललकार के विद्रोही रूप में पराधीनता से मुक्ति के गीत उच्चरित किए।

उनकी रचना में 'मेघनाथ – वध' एक ऐसे दुष्कर अंधेरे से पार पाना था,जिसका आधार अत्याचार पर टिका हुआ था।1928 में 'प्रण भंग' से उनकी रचनाधर्मिता का आरंभ माना जाता है। 'द्वंद्वगीत' में 1932 से 1939 तक की रचनाएं शामिल हैं। 'इतिहास के आंसू' 1952 में प्रकाशित है, जिसमें 'मगध महिमा ' पद्य नाटिका है। 'धूप और धुआं' जो 1953 में प्रकाशित हुई, जिसमें आशा की धूप के साथ, चिंता के धुंआ भी दिखाई दिया। 'नई आवाज' से नये स्वरों की अभिव्यक्ति आरंभ हुई। 'दिल्ली' 1956 में फिर 'नीम के पत्ते' 1956 में व्यंग्य व वक्रोक्तिपूर्ण कविताएं हैं। 'नील कुसुम' 1954 में आई फिर 1957 में 'नए सुभाषित' का प्रकाशन हुआ।

1963 में 'परशुराम की प्रतीक्षा' प्रकाशित हुई,जो चीन आक्रमण की वेदना को लेकर आई थी।1964 में 'कोयला और कवित्व' और उसी समय 'मृति तिलक' में उनकी अनुदित और मुक्तक रचनाओं का संग्रह भी आया। उनकी तीन महत्वपूर्ण कृतियां प्रबंध काव्य ने साहित्य जगत को आभामय बनाया।

कुरूक्षेत्र ––1946
रश्मिरथी ––1951
उर्वशी ––– 1961

उनकी सभी रचनाएं अनेक पृष्ठभूमि से उभर कर आई हैं, जिनमें उनकी काव्य यात्रा के वैविध्य पूर्ण ठहरावों को देखा जा सकता है। दिनकर की कलम आलस्य नहीं कर्मवाद को प्रश्रय देती है। जीवन को समझौते के रूप में नहीं, जुझारूपन की तरह जीना चाहते हैं। उनकी सृजनशीलता में आक्रोश, परिवर्तन, विद्रोह तो है, लेकिन भारतीयता के ममत्व का सदा संवरण करते हुए।

दिनकर के प्रथम तीन काव्यों में – 'रेणुका' (1935)

'हुंकार8 (1938)

'रसवंती' (1938)

इनमें दिनकर का अपनी जिज्ञासा, उत्सुकता, सौंदर्यमन, लेकर आया है। पर यहीं रूका रहना उनकी नियत नहीं थी, उनके भीतर की चेतना की कुलबुलाहट उन्हें तटस्थ नहीं रहने देना चाहती थी।उनकी रेणुका में अतीत का गौरवशाली पौराणिकता के साथ, वर्तमान की उपेक्षा और नीरसता से त्रसित उद्‌गारों ने भी करवटें बदलीं हैं। इसी तरह हुंकार में उपस्थित दैत्यवृत्ति के प्रति आक्रोश का प्रदर्शन उन्मुक्त रूप से हुआ है। दिनकर सामाजिक चेतना के कवि थे, यह बात'सामधेनी' (1947) में खुल कर आई है। दिनकर की सामाजिक चेतना देश और समसामयिक परिवेशों से आगे बढ़ कर विश्व पीड़ा का अनुभव करती है।

1955 में 'नील कुसुम' में उन्होंने कुछ नये आयामों को छुआ है। यहां उनका कवि प्रयोगधर्मिता के लिए आस्थावान है। वे समय के अन्य पारिवेशिक रचनाओं से जुड़ते तो हैं,पर स्थापित नहीं हो पाते, उनका कृतिकार अलगता की मांग करता है।

इसके छः साल बाद 1961 में 'उर्वशी' प्रकाशित हुई, हिंदी साहित्य संसार में इस कृति से कोई अछूता नहीं रह पाया, प्रतिक्रियाएं भले ही भिन्न रहीं हों। इस प्रबंध काव्य में कथानक तो पौराणिक है, इसमें मिथकों के माध्यम से देवता और मनुष्य, स्वर्ग व पृथ्वी, अप्सरा और लक्ष्मी, साधना और सांसारिक जीवन तथा आध्यात्मिक परिस्थितियों को मनोविश्लेषणात्मक चित्रण किया गया है।कवि का ओजस्वी स्वर नये शिखरों को स्पर्श करने पहुंच जाता है।

उनके काव्य – संग्रह 'रेणुका' में अतीत के गौरव का सम्मान परिलक्षित



होता है। साथ तत्कालीन समय की शुष्क वेदनाओं से त्रसित मन के उद्‌गार भी सुना जा सकता है।

आरंभ में दिनकर की ओज से भरी कविताएं 'युवक' नामक पत्र में छपीं, जिसका संपादन रामवृक्ष बेनीपुरी जी करते थे। उस समय ये अमिताभ नाम से लिखते रहे। बहुत सादा जीवन शैली जीने वाले दिनकर मेधावी छात्र, देश प्रेम से ओतप्रोत युवक ने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी सक्रियता से सबको प्रभावित किया। उनकी गणना आधुनिक वीर रस के कवियों में की जाती है। वे दर्शनशास्त्र, इतिहास, राजनीति शास्त्र के जानकार थे। संस्कृत, बांग्ला,उर्दू, अंग्रेजी का भी गहन अध्ययन किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उन्हें राष्ट्रकवि की संज्ञा से विभूषित किया गया। 'उर्वशी' को भारतीय ज्ञानपीठ और 'कुरूक्षेत्र 'को श्रेष्ठ काव्यों में चयनित किया गया।

# असमिया लोकगीत बिहू में मानवीय संवेदना

असम की प्रधान भाषा असमिया है, किंतु इस असमिया भाषा के विविध आंचलिक रूप भी मौजूद हैं। असम साहित्य से भी पहले वहां के जनजीवन में लोकगीतों का अस्तित्व देखा जा सकता है। मौखिक साहित्य के क्षेत्र में असम की भाषाओं की स्थिति सशक्त है तथा इन भाषाओं के लोकगीत,प्रवचन,लोक– कथाएं प्रचलित हैं।

किसी भी क्षेत्र की महत्ता उसके प्राचीन महत्ता पर आधारित होता है, वहीं उसकी लोक संस्कृति की जड़ें भी पाई जाती हैं। डा. कृष्ण गोपाल का कहना है कि –'उत्तर पूर्वांचल का प्राचीन नाम प्राग्ज्योतिषपुर है। भगवान शिव, वशिष्ठ,राम, परशुराम, कृष्ण व पांडवों आदि के जीवन प्रसंगों को अपने में समेटे यह क्षेत्र अपनी विविधताओं के लिए प्रसिद्ध है। सैकड़ों जनजातियां, अनेक भाषाओं तथा विविध परंपराओं वाले समूहों को एक सूत्र में आबद्ध करने का कार्य भक्तों एवं संतों ने कुशलता पूर्वक किया है।'

सांवरमल सांगानेरिया लिखते हैं कि –––'आज ये जनजातियां पहले जैसी आदिम अवस्था में रहने वाली नहीं रह गई हैं।इनके बांस व लकड़ी के खूंटों के मचान पर बने चांग – घरों में भी बिजली पहुंच चुकी है। आज इनमें भी शिक्षा का प्रसार है। ये भी स्कूल– कालेजों में पढ़ते हैं। कंप्युटर/ मोबाइल इनके लिए अचरज की वस्तु नहीं है। आधुनिक होने के साथ ही ये लोग आज भी अपनी सनातन धार्मिक मान्यताओं,रीति– रिवाजों को अपनाए हुए हैं। ये जानते हैं कि – इन्हें छोड़ने के बाद,ये अपनी पहचान भी खो देंगे।

रंगाली बिहू में बिहूनाम गायन की प्रथा है, जिसमें गायन आरंभ करने से पूर्व अपने गुरूजनों और बुजुर्गों का आशीर्वाद लेने की प्रथा है –जिसमें हमारी उस उदार संस्कृति का परिचय मिलता है जहां गुरुदेव और बुजुर्गों को सम्मान देना हमारा पहला कर्तव्य है, जिससे हमारी कला केवल विलासिता एवं इन्द्रिय सुख का विषय न बन कर, सांस्कृतिक धरोहर बन जाए।

सम्मान में गाए जाने वाली गीत की कड़ियां निम्न हैं –



**बिहू आन्नोदीया बिहू विनोन्दीया**
**बिहूर मोउ मिठा मात**
**बिहुर बा लागि बिहुवा ककाइर ऐ**
**देवोधोवोनि लागिसे गात।**

(अर्थात – आनंदमय बिहू,विनोदमय बिहू और बिहू का मधु के समान मीठा संकेत हो चुका है। बिहुवा यानि बिहू वालों को बिहू की बयार लग चुकी है, और उनके श्री पर देवधुन सवार हो गया है।)

इसी प्रकार हुसोरि लोकगीत आध्यात्मिक भावों से ओतप्रोत हैं। रंगाली बिहू पर लोग सज– धज कर रास्तों पर गाते हुए निकलते हैं,और लोग अपने–अपने घरों से बाहर आकर, फूल, फल,तिलक,मिठाई, से उनका अभिनंदन करते हैं और कुछ भेंट भी देकर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।हुसोरि कीर्तन में गाए जाने वाली ईश– वंदना कुछ इस प्रकार की होती है –

**कृष्णाइर मुरोते बकुल फूल एपाही**
**नियोर पाइ मुकोलि होल**
**गोविन्दाइ रामो राम**
**स्वर्गोदेव उलाले बाट होरार मुखोलोई**
**दुलियाइ पातिले दोला**
**गोविन्दाइ रामो राम ।**

अर्थात ––) कृष्ण के मस्तक पर बकुल का पुष्प सुशोभित है,ओस से वो विकसित हो रहा है, गोविन्दाई राम–राम,राजा राजपथ पर निकल रहा है, उसके साथ डोला और कहार हैं। गोविन्दाइ राम राम।)

गुरु वंदना और ईश वंदना के बाद लोकगायक अपने चाहने वाले गृहस्थ जनों के लिए भी मंगलकामनाएं करते हुए कहते हैं –'एक कटोरी में लहसुन और एक कटोरी में प्याज,एक कटोरी में साग के पत्ते। हम लोकगायक सिर के बाल को तोड़ कर आशीर्वाद देते हैं कि – हमारे गृहस्थ सकुशल रहें।)

**एटा बाटित नोहोरु**
**एटा बाटित पोनरु**
**एटा बाटित खुटोरिया शाक**

**मुरोर सुलि सिडिं**
**आशीर्वाद करिसो**
**गृहस्थो कुशोले थाउक।**

बिहु श्रृंगार पर्व भी है,असम में नारी स्वातंर्त्य और अधिकारों को वरीयता दी जाती है। नारी प्रधान समाज में पति को स्वयं चुनने का अधिकार भी दिया गया है। बिहू के दिनों में इस सामाजिक छूट को स्त्रियां अपने भावी पति को चुनने और उनका वरण करने हेतु प्रयोग करती हैं तथा अपने सपनों को साकार करती हैं।

**बोहगोर बिहुते पूर्णिमार रातिते**
**पातिम तोरे मोरे बिया,**
**दूयो एकेलोगे घोरे पाति खाम**
**मिलास ऐ दुखनि हिया।**

अर्थात ––(बैसाखी बिहू में पूनम की रात में हम तेरा मेरा ब्याह रचाएंगे।दोनों का ह्रदय मिला कर,घर बनाएंगे,दोनों साथ में खाएंगे।

बिहू के आगमन पर युवती और किशोरी भी बिहू में जाने को मचल रही हैं, परंतु उसकी मां अपनी बेटी के किशोरवय से चिन्तित है और उसकी तरूणाई को ढंकने का प्रयोग कर आश्वस्त है। कुछ इसी तरह का भाव इस लोकगीत में उद्भाषित

**ओहोते होलाबो पात,**
**आमार मोइनाइ**
**बोरोनोटि होलाले**
**लोलि रोड़ा रिहा गात**

अर्थात –( बरगद में नए– नए पत्तों की तरह मेरी बेटी ने भी अपना रंग बदला है, उसने अपने शरीर पर भी लाल रंग की रिहा ओढ़ रखी है।)

विरह रस का एक चित्रण देखिए – विरहिणी नायिका अपने प्रियतम के बिना व्याकुल है उसे कहां खोजे यही सोच कर आतुर है। लोककवि ने यहां अनोखी कल्पना की है। नायिका अपनी आंखों को दूत बनाकर अपने प्रीतम को खोजने दूर– दूर भेजती है। असम अपनी बांस संपदा के लिए जाना जाता है, इसलिए लोकगीतों में भी इसका चित्रण बहुतायत है।



**बांहोर आगोलै साइनो पोठियालो**
**बांहोर कोनो डालि पोन**
**सेनाइटिर फालोलै साइ नोपोठिइयालो।**
**जेन पुर्णिमारे जोन।**

अर्थात –( नायिका बांस की चोटी पर अपनी आंखों को भेजती है,बांस की फुनगी पर खड़ी होकर,प्रियतम को खोजने के लिए चारों ओर नजरों को भेजा,और स्वयं पूर्णिमा की चांद सी अड़ी रही।

हमारे लोकगीत में लोक के माध्यम से कुछ पारलौकिक बातें भी गाई जाती हैं। ये दार्शनिक गीत की तरह होते हैं। बिहू गीत में लौकिक प्रतीकों का बहुत प्रचलन है। इसमें जितना प्रत्यक्ष अर्थ है,उतना ही परोक्ष अर्थ भी। इनमें अभिव्यक्ति की पूर्ण सामर्थ्य है। प्रियतम के बिछोह में नायिका व्याकुल होकर,अपने मनोगत भावों की अभिव्यंजना इस तरह करती है –

**हांहे होई सोरिम गोई तोमारे पुखुरीत।**
**मासै होइ पोरिम गोई जालोत।**
**घामे होइ ओलाम तोमारे सरीरोते।**
**माखि होई सुमा दिम गालोत।**

अर्थात –( हंसिनी बन कर तेरे पोखर में तैरूंगी,मछली बन कर तेरे जाल में पड़ूंगी, पसीना बन कर तेरे रंध्रों से निकलूंगी और मक्खी बन कर तेरे गालों का चुंबन करूंगी।)

पूर्वोत्तर के लोकगीतों में वीरगाथाओं का वर्णन,परदेश– गमन संबंधी घटनाएं, पूर्वजों की उपलब्धियां और वन्य जीवन से संबंधित आख्यान होते हैं। अधिकांश लोकगीत मिथकों पर आधारित हैं। पूर्वोत्तर भारत की अर्थव्यवस्था कृषि जीवन पर आधारित है, अतः अधिकांश पर्व, त्यौहार,कृषि पर आधारित हैं। धान का बीज बोने, रखवाली करने,फसल काटने के उपरांत अनेक पर्व – त्यौहार मनाए जाते हैं। नृत्य गीत इन आयोजनों के प्रमुख अंग हैं । पूर्वोत्तर का समाज उत्सवधर्मी है, इस क्षेत्र के अनेक समुदायों में मृत्यु को भी उत्सव की तरह मनाया जाता है। पूर्वोत्तर के लोकगीतों में पशु– पक्षी, पेड़– पौधे,जीव– जंतु आदि का मानवीकरण किया गया है।पशु पक्षी भी परस्पर विचार– विनिमय करते हैं,तथा एक– दूसरे की सहायता करते हैं।

पूर्वोत्तर के प्रणय गीतों में प्रेम की पराकाष्ठा और औदार्य दिखाई देता है।इन गीतों में आत्मसमर्पण आत्मोसर्ग और प्रेम की उदात्तता दिखाई देती है।

प्रियतम से मिलन होने पर नायिका आशंकित हो उठती है कि कहीं उसे फिर से विरह – वेदना न भोगनी पड़े।वह केवल अपने मनमीत को ही अपने भावों में बसाए रखना चाहती है।

**दिखौ नै एरिबो पारों मोइ मोयना।**
**जांजी ने एरिबो पारों**
**तोमार ऐ भावोना एरिबा नोवारा**
**नेखाये थाकिबो पारों**

अर्थात –(दिखौ को मैं छोड़ सकती हूं प्रिय,जांजी को भी त्याग सकती हूं,तुम्हारी भावना मैं त्याग नहीं सकती,चाहे भोजन भी त्याग दूं।)

दिखौ और जांजी नदियों के नाम हैं।

बिहू लोकगीत न केवल असम की पहचान है बल्कि भारत विविधधर्मी संस्कृति का प्रमुख हिस्सा भी है। ये लोकगीत इस अंचल के महाभारतकालीन परंपराओं की उपज हैं।इनका जन्म इसी महाभारतीय परंपराओं से हुआ है ।ये किसी असभ्य अपूर्ण समाज का साहित्य नहीं है, बल्कि पूर्वजों द्वारा प्रदत्त धरोहर है, जिसमें जीवन के विविध प्रसंगों से प्राप्त अनुभवों एवं सत्यों की वास्तविक अभिव्यक्ति होती है। इसमें कृत्रिमता नहीं होती। इसकी सरलता और सहजता ही इसे उत्कृष्टता प्रदान करती है। शास्त्रीय साहित्य एक तराशी हुई सुगढ़ प्रतिमा है तो, लोक साहित्य कच्चे,कुवांरे अनगढ़ भावों का समूह हैं।इसकी वाचिक परंपरा का पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहमान रहना,इसकी जिजीविषा का प्रमाण है।



# असम की लोककथाओं में मानवीय मूल्य

नदियों, पर्वतों, झरनों, वनों से आच्छादित इस प्रदेश में लोक जीवन की भी अपनी अलग पहचान है।सुदूर पूर्वोत्तर की इस भूमि पर जहां एक ओर कामाख्या देवी की धार्मिक मान्यताएं जीवंत हैं, वहीं दूसरी ओर जनजातीय जीवन की मिली जुली सामाजिक शैलियां भी हैं। तंत्र–मंत्र और जादू टोने के लिए प्रसिद्ध इस भूमि पर ,अपने जीवन के संसाधनों की पर्याप्तता तो है ही, साथ ही जीवन को सरस व रोचक बनाने वाली कथाएं और गीत भी हैं। यहां की लोक कथाएं सदियों से मौखिक रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी चली आ रही हैं।उनका अपना लहजा और मौलिकता है।

जहां तक असमिया समाज की बात है, यहां विभिन्न समय में असम आए हुए ,विभिन्न जन गोष्ठियों, रीति–रिवाजों, उत्सवों और संस्कृति सभी पर इनका प्रभाव परिलक्षित होता है। जिनमें नेग्रिटो, आस्ट्रिया, द्रविड़,मंगोल आदि के साथ – साथ अन्य समाज के मिश्रण से वृहद असमिया जाति का गठन हुआ।असम में प्रचलित लोक साहित्य की बात की जाए तो, लिखित साहित्य के साथ– साथ लोक साहित्य की भी यहां कमी नहीं है। इसमें सामान्य जनमानस के भावावेगों, अनुभूतियों, सुख–दुख के क्षण, विश्वास, परंपरा आदि संस्कृति का विविध पक्ष मुखर हुआ है, जिनमें पूरे परिवेश के साथ संदेश और शिक्षा दोनों है।

लोककथा का जन्म मानव के साथ– साथ हुआ। लोक में कहानी कहने की कला सर्वाधिक प्राचीन व लोकप्रिय है।आदिम युग से मानव ने अपनी अनुभूतियों को कथा रूप में कहना सीखा। उसने अपने बहुत से जीवन – दर्शन को भी लोककथाओं के माध्यम से कहना सीखा।

'लोककथा शब्द मोटे तौर पर लोक प्रचलित उन कथानकों के लिए व्यवहृत होता है,जो मौखिक या लिखित परंपरा से क्रमशः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते हैं।'

ये विचार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी के हैं।

एक लोककथा है 'एक थी सरूमा' यह कहानी असम के ग्वालपाड़ा क्षेत्र की है, जिसमें लक्ष्मीनंदन साहुकार नाम के एक व्यापारी दम्पति हैं, जिनको कुछ वर्षों में

एक कन्या सरुमा की प्राप्ति होती है। केवल तीन वर्ष की अल्पायु में ही सरुमा की मां का अंत हो जाता है। अब केवल लक्ष्मी साहुकार को अपनी लड़की की देखभाल करनी पड़ती है, वो बहुत ख्याल भी रखता था। धीरे धीरे सरुमा बड़ी होने लगी और साहुकार को अपने व्यापार में समय देना पड़ता था, अतः वो परेशान हो जाता। उसकी समस्या समझ कर लोगों ने दूसरे विवाह की राय दी।

पहले तो उसने साफ मना कर दिया, क्यों कि दूसरी पत्नी का क्या भरोसा –??? और सरूमा उसकी आंखों का तारा थी।

पर लोगों ने समझाया हर सौतेली मां एक समान नहीं होती। तुम्हें अवश्य अच्छी पत्नी मिलेगी और परिवार सुखी हो जाएगा।

सरुमा की नयी मां आ गई। सरुमा बहुत प्यार करती और उसकी हर बात मानने लगी। पर विमाता के मन में खोट आने लगा और वो उसे सताने लगी।

सबसे पहले उसने उसे मछली पकड़ने को पोखर में भेजा। वह बहुत छोटी थी और यह काम उसे नहीं आता था,पर रोती हुई वो पोखर चली गई।

वहां उसकी मां एक बहुत बड़ी मछली बन कर आई और उसे भर पेट भोजन करवाई।

वह हंसते खेलते घर आई।

विमाता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये तो खुश है,दुखी नहीं हुई।

अब उसने नयी तरकीब सोची और उसे फल के बाग से फल लाने भेजा।

वहां भी उसे लाचार और उदास देख कर उसकी मां पक्षी के रूप में हाजिर हुई,जी भर भोजन कराई ,फल खिलाई।

वो हंसते – खेलते फल लेकर घर पहुंच गई। जब उसे कारण पता चला तो,उसने बाग के पेड़ कटवा दिया। इसी तरह अनेक यातनाओं को सहते हुए सरूमा के दिन व्यतीत हो रहे थे।

पर हर बार उसकी मां आकर सहायता कर जाती।

इस बार उसकी विमाता उसे जान से मारने की कोशिश करने लगी।



उसकी मां को सब पता चल गया और वो पहले ही एक कवच पहना गई। ताकि तलवार का असर न पड़े।

विमाता तलवार खरीदने गई थी और लक्ष्मी साहुकार व्यापार करके सरुपा के लिए ढेरों सामान खरीद कर घर पहुंचा।

वह जोर जोर से उसे आवाज लगाने लगा।

इतने में उसे एक अदृश्य आवाज सुनाई दी, जिसने सरुपा पर हो रहे सारे अत्याचार की कहानी बताई।

लक्ष्मी साहुकार की आंखें खुली रह गई, जैसे ही विमाता तलवार लेकर घर में प्रवेश की।

साहुकार ने उसे खूब खरी–खोटी सुनाई और सदा के लिए मायके भेज दिया।

अब सरुपा पिता के साथ चैन से रहने लगी ।

इस कहानी में बाल मनोविज्ञान और बाल संवेदना का बहुत सुंदर चित्रण है, साथ ही बच्चों को जोखिम भरे काम नहीं सौंपने चाहिए, विमाता की दुर्बुद्धि ने उससे अनेक पाप करवाए। व्यापारी पिता का न्यायोचित निर्णय आदि इस कहानी को सजीव और सार्थक बनाते हैं।

इसी तरह चाचा भतीजे की कहानी,शेर को मिला सवा सेर,तेजीमाला की वापसी, चंपावती, बारिश हुई मोर नाचे, निन्यानबे का चक्कर आदि अनेक लोकप्रिय लोककथाएं हैं, जो समाजिक जीवन से संबद्ध समस्याओं को उजागर करती हैं और निदान भी खोजती हैं।

वरिष्ठ लेखक और अनुवादक दिनकर कुमार लिखते हैं –'पूर्वोत्तर के समाज में लोककथाओं और मिथकों की समृद्ध परंपरा है। सभी समुदायों में अपने देशांतरगमन,पूर्व पुरूषों तथा ईश्वरीय प्रतीकों के संबंध में भिन्न–भिन्न मिथक प्रचलित हैं। यहां प्रेम –कथाएं भी पर्याप्त संख्या में मिलती हैं। शिकार संबंधी लोककथाएं भी खूब लोकप्रिय हैं। इन लोककथाओं में मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने की भावना निहित होती है। यहां के लोकगीतों में वीरगाथात्मक

आख्यान, देशांतरगमन संबंधी घटनाएं, पूर्वजों की उपलब्धियां तथा आखेट से जुड़े अनुभव वर्णित होते हैं।'

पूर्वोत्तर का समाज सामूहिक जीवन में विश्वास रखता है। यहां व्यक्तिवाद नहीं सामाजिक जीवन को वरीयता दी गई है।सभी पारिवारिक समारोह में समाज का होना आवश्यक होता है।इससे भाईचारा और आपसी सहयोग की भावना विकसित होती है।

धर्म–कर्म में इन लोगों की अपार आस्था है, कोई भी संकट आने पर ,उसके समाधान खोजने के बदले लोग,पूजा आदि कराने में विश्वास रखते हैं। झाड़–फूंक,तंत्र– मंत्र, बलिप्रथा, टोटका आदि को सहज स्वीकार करते हैं। धार्मिक मान्यताएं हर समय इनकी जीवन शैली को प्रभावित करती हैं। इनकी बहुत से लोककथाओं में गायन, नृत्य, वादन का भी समन्वय रहता है।

गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि –'लोकाश्रय में ज्ञान बहुत समय से व्याप्त है,वह इधर–उधर हो जाता है, और उसे फिर से संपादित करने की जरूरत रहती है।यह लोकाश्रित ज्ञान के संस्कारित शास्त्रीय हो जाने की एक प्रक्रिया है,अन्यथा उसका बीज तो लोकाश्रय में अनादि से है। संकल्पों के बीज सदा से लोकाकाश में रहते हैं।'

असम में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार,उडीसा, और बंगाल आदि से , अंग्रेजों द्वारा लाए गए चाय बागान में कार्यरत मजदूरों के आने से भी सांस्कृतिक परिवर्तन हुए, जिनका प्रभाव उनके लोकजीवन पर देखा जा सकता है।

हमारी हर लोकरीतियों की अलग–अलग लोककथाएं भी हैं। करमा पूजा, पीडिया, गोधन , गोदना, जिऊतिया, आदि भी लोककथाओं से जुड़ी हुई हैं।

लोक साहित्य शास्त्रीय साहित्य की जननी होती है। यह मूल संग्रह या अनुभव माना जा सकता है,जिसे मनुष्य बिना किसी कृत्रिमता के, बिना किसी पक्षपात के, ज्यों के त्यों रट लेता है और अपने आगे की पीढ़ी को सुनाता रहता है। बाद में समाज में लिखित और शास्त्रीय साहित्य भी उपलब्ध हुआ,जो पुराने लोककथाओं से ही प्रेरित माना गया। इसमें लोककथाओं के मौलिक तत्व विद्यमान रहते हैं। लोक साहित्य लिखित नहीं होता,यह मौखिक रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी चला आ रहा है।आगे चलकर इसे संरक्षित करने के लिए, इसको लिपिबद्ध भी किया गया।



पूर्वोत्तर के आठों राज्यों में सैकड़ों जनजातियां रहतीं हैं। इनके कारण लोक साहित्य में भी व्यापकता और विविधता है।आज भी जिन जनजातियों की लिपियां नहीं है अथवा लिखित साहित्य नहीं है,वे लोक साहित्य में बहुत समृद्ध हैं।

लोककथाओं का आयाम व अवदान धर्म–कर्म, पशु–पक्षियों की कथाएं,भूत – प्रेत,जादू– टोने,ओझा– सोखा से लेकर नीति कथाओं तक विस्तृत है। ये कथाएं परंपरागत,वृत्तात्मक, और कंठस्थ होती हैं।

संभवतः मनुष्य जाति जितनी पुरानी है,उतनी ही पुरानी लोककथाएं भी हैं। इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना को विकसित करना अधिक है, जिससे वह अपने सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों की स्थापना करते हुए, पुरानी भूलों के अनुभवों से सचेष्ट होते हुए, एक क्रमवार परिशिष्ट जीवन की ओर अग्रसर हो सके।

विष्णु प्रभाकर जी के शब्दों में 'लोक साहित्य इसी कुंवारी अटपटी अनुभूति से ओत–प्रोत है। वहां ज्ञान पर जोर नहीं है,है भी तो उसका अर्थ जानना नहीं, जिज्ञासा है,जैसे शिक्षा का अर्थ कुछ देना नहीं,जो है उसे जगाना है। जैसे बीज की परिणति फल नहीं, बीज है। ऐसे ही ज्ञान की परिणति जानने में, जिज्ञासा में है। नागरिक सभ्यता और शिक्षा के प्रभाव से युक्त लोकमानस तो बच्चे की तरह है।'

**संदर्भ ग्रंथ –**

1 –असम की लोक कथाएं

2– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य

3– परंपरा (पत्रिका ––2019–2020)

4– रंगों के गीत हैं फड़

5– विष्णु प्रभाकर का साहित्य

# वर्तमान साहित्य में नदी

साहित्य हमारा आंतरिक संस्कार है, जिसे प्राप्त मूल व मौलिक अवस्था से हमें अपनी अनुभूति व आत्मिक साधना से परिमार्जित एवं परिष्कृत करते हुए,विस्तृतीकरण का आकार देते हैं। यह निरंतर और क्रमशः स्व के सुस्वरूप का अवलोकन है। एक उर्ध्वगामी प्रायोगिक प्रक्रिया है,जिसे हम निरंतर जीते हैं। इसमें विराम, पटाक्षेप, और तिलिस्म का समावेश नहीं है। इस अदृश्य प्रक्रिया की शब्दमयी अनुभूतिक संस्करण ही साहित्य है।

व्यक्ति पंचभूतों से निर्मित होकर जीता है और उन्हीं में विलीन हो जाता है। ये पांचों तत्व उसके भीतर के तत्व को भी उच्चस्थ और क्रमबद्ध आसन्न करते हैं, जिसमें जल जहां एक ओर उसे सजल और तरल बनाता है, वहीं दूसरी ओर उसे जीवन के मरूस्थ चिंतन से उबारता है। यह क्रम अनादि व अनंत प्रवाहमान है और इसी वजह से हमारी सभ्यता की जननी और धरातल हैं नदियां। सभ्यता पनपी और विकसित होकर इन नदियों के नाम से समुज्ज्वल हुई। जल स्वयं तो सतत बहता रहा,पर सभ्यता को स्थिरता दी। मनुष्य अपना परिमार्जन करते हुए,इनके तटों पर विकसित होता रहा। व्यक्ति की पारलौकिक संचेतना ने इसे मां का दर्जा भी दिया।हम तट पर जिए,पार जाने की आकांक्षा लिए।

साहित्यकार मन को नदियां अपने तरीके से बांधीं और मुक्त करती रहीं। कुंठाओं से मुक्ति का श्रोत हैं नदियां, जिसने स्वयं अपनी आबद्धता को अस्वीकार कर, अपने को उन्मुक्त प्रवाहमान रखा और अपने दुरूह व असाध्य रास्तों को पार करती रही। एक लंबी कविता लिखते हुए – कंकड़ों के भोजपत्र और पत्थरों के कागज पर अपने अस्तित्व का प्रमाणपत्र स्वयं लिखती रही। जैसे विद्रोही मन लिप्साओं और मोह की यथार्थता को मित्यांत मानता हुआ, लक्ष्य की ओर सदा गतिशील रहता है।

वह रेत पर बही, झाड़ियों से गुजरी, बीहड़ों का सामना की , बांधी गई, कभी विज्ञान तो कभी पुराण के भीष्म शरों से, तटों से जुड़ी और सघनता – विरलता को समभाव से पार करते हुए, एक निनाद बन खोती रही।

प्रसाद की रचनाओं में बार –बार नदी मुखर हुई है,, संभवतः काशी के



तत्वज्ञानी तटों ने उनकी प्रज्ञा को यहीं अनहदनादित किया था ––––– कामायनी में प्रलय में सृजन की आस लिए उनका जल –प्लावित आकुल मन,उस धरा को देखने के लिए आतुरमान था,जो प्रसूता और उत्पादिका हो।प्रलय की चलायमानता पर प्रणय की अंकुरण चाहते थे।

**बधी महावट से नौका थी।**
**सूखे में अब पड़ी रही।**
**उतर चला था वह जलप्लावन**
**और निकलने लगी मही।**

नदियों में पारगामिता का संदेश बाचने को प्रसाद का कवि मन नदी ही नहीं नाविक से संवाद करता है –

**ले चल वहां भुलावा देकर**
**मेरे नाविक धीरे – धीरे**
**जहां सांध्य सी जीवन छाया**
**ढीले अपनी कोमल काया।**
**ताराओं की पांत घनी रे!**

पंत ने गंगा नदी में नारी को प्रतिष्ठापित किया है। उसके अविरल अनंत सौंदर्य में लीन होकर वे उस चांदनी रात का अवलोकन करते हैं – जिसमें अनंत समाहित है,,उस गंगा रूपी नायिका का चंचल आंचल नीला आकाश है। यह नदी की सजीवता को प्रमाणित करता हुआ, उसके मानवीकरण की अभिभूत दृश्यावली है।

**शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्जवल**
**अपलक, अनंत, नीरव भूतल**
**सैकत शय्या पर दुग्ध धवल**
**तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म, विरल**
**लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल**
**तापस बाला गंगा निर्मल**
**शशि मुख से दीपित मृदु करतल**
**लहरे उर पर कोमल कुंतल**
**गोरे अंगों पर सिहर –सिहर**
**लहराता ताल –तरल सुंदर**
**चंचल अंचल सा नीलांबर**

एक ओर नदियां जहां हमारी संस्कृति की ध्वज उद्‌बोधक हैं,, वहीं हमारे जीवन का प्राण– आधार भी। किंतु समय और विज्ञान की प्रगति के साथ,इसके प्रदूषित स्वरूप से संकट और अस्तित्व बाधा की स्थिति सामने खड़ी है। अनेक कवियों की रचनाओं में भी इस प्रकार के प्रसंगों की चर्चा है।देश में जल के गहराते संकट और  नदी प्रदूषण के कारण सरकार भी अनेक कदम उठा रही है।

'जल पुरूष' के नाम से विख्यात सामाजिक कार्यकर्ता बताते हैं कि ––सन् 2017 में नागरिक समाज ने जल सुरक्षा विधेयक का एक मसौदा जारी किया था, जिसमें भूजल उपलब्धता,नदी –प्रदूषण के विरूद्ध प्रभावी संरक्षण और आबादी के लिए स्वच्छ पेय जल उपलब्ध कराने में मदद मिलेगा, उन्होंने कहा कि जल ग्रहण का संरक्षण,नदी पर प्रदूषण भार को कम करना आदि विधेयक आधारित हैं।

डा. राजेन्द्र प्रसाद पांडेय की नदी, नदी में ही उगती है।

**पाट के दो हाथ फैला चित्त लेटी**
**लो नदी में नदी बहती जा रही है।**
**नदी में यूं ही नदी उगती नहीं है**
**बहुत को इसमें बहुत करना पड़ा है।**
**टूट कर, जुड़ कर,बिखर कर और मिल कर**
**बिंदुओं का श्रम यहां भरना पड़ा है।**
**नदी की हैसियत क्या है –?**
**क्यों नदी है?**
**घाट,भंवरे,लहर,गहराई किनारे**
**केकड़े,घोंघे, मछलियां,मगर,जोंके**
**कीच दलदल द्वीप वन नावें फुहारें।**

नदियों में नदी का उगना ही उसकी स्वाभाविक स्थिति है ––– उसका जुड़ना,बिखरना,मिलना सभी कुछ उसकी अवधारणा को चरितार्थ करता है।न पाटों के बिना उसका अस्तित्व है,न घाट,भंवर, द्वीप, और कीच के बिना उसकी परिभाषा को संपूर्णता दी जा सकती है।नारी और नदी के प्रतिमान समान हैं,, नारी भी दो कुलों में जीते हुए,अपने को उगा और बचा पाती है।बहना उसकी नियति और परिणति है,पर इस बहने में उसने जो सहा है ––– उस सहने और बहने का यथार्थ नदी है।

डा. कुंवर बेचौन की नदी समंदर को देते हुए चुनौती देते हुए कहती है कि –



**नदी बोली समंदर से मैं तेरे पास आई हूं।**
**मुझे भी गा मेरे शायर मैं तेरी ही रूबाई हूं।**
**मुझे ऊंचाइयों का वो अकेलापन नहीं भाया।**
**लहर होते हुए भी लो मेरा आंचल न लहराया।**
**मुझे बांधें रही ठंडे बरफ की रेशमी काया।**
**बड़ी मुश्किल पर निर्झर उतर पाई मैं धरती पर।**
**बचा कर रख मेरे सागर पसीने की कमाई हूं।**

कवि नरेश सक्सेना ने (चंबल एक नदी का नाम) चंबल की व्यथा और महिमा का बखान करते हुए कहा है –

**चंबल के तट तीर्थ नहीं हैं।**
**उसके बारे में प्रसिद्ध है**
**दरस करे तो रागी होए**
**परस करे तो बागी होए**
**और**
**करे आचमन मूल सिराए**
**चंबल तो बड़भागी होए।**

अज्ञेय ने 1949 में (नदी के द्वीप) नामक प्रतीकात्मक कविता के माध्यम से परंपरा और मनुष्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि –

**हम नदी के द्वीप हैं**
**हम नहीं चाहते कि हमको छोड़ कर**
**श्रोतवाहिनी बह जाए**
**किंतु हम हैं द्वीप**
**हम धारा नहीं हैं।**

नदी परंपराओं का प्रतीक है,द्वीप मनुष्य का, दोनों का होना आवश्यक है । द्वीप नदी का साथ रहना सुखकर पाता है, पर बहना नहीं चाहता।नदी का पुत्र अपने अडिगता के गुण को अक्षुण्ण रखते हुए,, परंपराओं का यानि नदी का साथ चाहता है।

युगश्रेष्ठ कवि तुलसीदास जी ने नदियों को अनेक रूपकों, उपमाओं, परंपराओं में चित्रित किया है। कोई सोच भी नहीं सकता कि ––––– भौगोलिक

यात्रिक रूप में भी नदी का वर्णन हो सकता है।

**सई उतर गोमती नहाए।**
**चौथे दिवस अवधपुर आए।**

अनुसूइया माता सीता को आशीर्वाद देती हैं – पवित्र पुराणज्ञ नदी के माध्यम से,जो आगे चलकर एक शाश्वत घोषवाक्य बन गया।

**जब लगि बहई गंग जल धारा**
**होंहि अचल एहवात तुम्हारा।**

मंदाकिनी नदी की भी सौंदर्यपूर्ण और तपोरूप की चित्रण है। संपूर्ण कथा के प्रसंग भले ही भिन्न हों, नदियां अवश्य हैं।

जिन नदियों को कबीर ने निस्वार्थ और निष्पक्ष बताया –

**वृक्ष कबहु नहीं फल भखै।**
**नदी न संचौ नीर।**
**परमारथ के कारणे**
**संतन धरा शरीर।।**

उन्हीं नदियों को तुलसी अकाम बताते हैं ––––––

**जिमि सरिता सागर महु जाई।**
**जद्यपि ताहि कामना नाहीं।**
**तिमि सब संपति बिनहिं बुलाए**
**धर्मशील पहिं जाहि लुभाए।**

सूरदास ने जब कृष्ण को वियोगी बनाया, तो उनको हंससुता के लिए बिलखते देखा –

**उद्धो मोहिं ब्रज बिसरत नाहिं।**
**हंससुता की सुंदर कगरी अरू तरूवर की छाहिं।**

मीरा ने दो नदियों को एक साथ याद करते हुए इकतारे में प्रवाहित किया –

**चलो मन गंगा यमुना तीर।**
**गंगा यमुना निर्मल पानी शीतल होत शरीर।**



गंगा यूं नहीं बनी मां – उसके अंतस्तल में बहुत गहराई से एक समदृष्टा है,

**गंगा**
**घड़ियाल, कछुआ,**
**मछली, घोंघा**
**सीप,सांप**
**बगुला,टिटिहरी,ऊदक, केंकरा**
**पेंगुइन, ह्वेल,जोंक**
**प्रवासी पक्षी**
**हरिन,हाथी बाघ**
**नन्हें कीड़े मकोड़ों की भी मां है।**
**जो किसी में भेद न करें**
**सबको एक आंख से देखे**
**वही गंगा है।**

कटनी के कवि विजय बागरी आधुनिक समय की संवेदन शून्य सामाजिक स्थितियों के लिए लिखते हैं –

**रक्त रंजित हो रही**
**संवेदनाओं की नदी।**

**वक्त के सैलाब में**
**अरमान सारे बह गए।**
**आंसुओ की धार में**
**अविचल किनारे बह गए।**
**सब बहा कर ले गयी**
**दुर्भावना ओं की नदी।**

प्राचीन समय से नवगीतों तक नदी बहती चली आ रही है,, भले ही वो हमारे समय को व्यक्त करती चल रही है,,पर बह रही है –– इसके बहाव में आधुनिक युगबोध, वैश्वीकरण, बाजारवाद,महामरी सारी छवियां हैं,, और इस तरह नदी के कैनवास पर , जल की तरलता में भावनाओं के रंग जनमानस को उकेर रहे हैं। नवगीत अब लोक में अपने शब्द,सुर, संयोग को तलाश रहे हैं। लोक मुहावरे, बिंब और शब्द नवगीतों को यशस्वी बना रहे हैं। व्यक्ति और समाज की अपसंस्कृति अब

पटाक्षेप पर, कुछ नया करना चाहती है।नईम जी की ये पंक्तियां –

**आओ हम पतवार फेंक कर**
**कुछ दिन हो के नदी ताल के**
**नाव किनारे के खजूर से**
**बांध बटोरें शंख सीपियां**
**खुली हवा पानी में सीखें**
**शर्म हया की नई रीतियां**

**बांचे प्रकृति पुरूष की भाषा**
**साथ – साथ पानी उछाल के**

कवि सतीश वर्मा बहुत संवेदनशीलता से जीवन की कुंठाओं, पीड़ाओं और द्वंद्व को सकारात्मक रूप में उभारा है। विषम परिस्थितियों में भी हारने की प्रवृत्ति नहीं, विषमताओं का सामना करने का साहस रखने वाला कवि यात्रा से नहीं घबराता नदी की तरह –

**सुनहरी मछलियां**
**थोड़ी– थोड़ी धूप सबके लिए**
**बिखरे मोती मैले पन्ने**
**स्वयं से लड़ते हुए**
**अंधेरे में उभरते पदचिन्ह**
**एकल यात्रा**
**बहती हुई नदी का दर्द**
**आकाश रोया था**
**आंखों में जमीं हुई झील**
**सौ– सौ चांद**
**नमक का दरिया**
**पत्थरों का शहर**

नदी आज भी हमारे जीवन के हर रंग में शामिल है, समय व परिस्थितियों ने दोनों को ही प्रभावित किया है, पर जीते दोनों संग हैं। नदियां मानव जीवन के समग्र की शैली हैं,, एकांत,बनवास, पर्वतावास, संन्यास, समाज, और परंपराओं की सहचरी है। आदमी का अंतिम पृष्ठ भी इसी के साक्ष्य में लिखा जाता है। नदी जानती



है एक पीड़ा को जीना,आदमी आते हैं और चले जाते हैं, नदी उसी तट से वहीं प्रतीक्षारत रहती है।

**उजड़ गये टेंट**
**उतर गये भोंपू**
**पीपो के पुल भी खुल रहे**
**मीलों तक फैले हुए बाजार**
**यज्ञशाला, कथा –स्थल, भजन –कीर्तन, आरती**
**सब उठ गये।**

**कड़ाही में तलती गर्म जलेबी**
**चुड़िहारिन, किराना,पारचून**
**चिकित्सा,सुरक्षा, तैराक, अग्निशामक दल**
**और खोए हुए लोगों व सामानों की घोषणाएं**
**सब गायब है।**
**गीत गाती टोलियां, नदियों के पक्षी**
**कल्पवास के साधु, योगी,गृहस्थ**
**शिविर,सर्कस, पुस्तकालय**
**कहीं कुछ भी नहीं है।**
**बस लेटी है नदी उदास**
**रेतीले आंचल पर**
**बिखरे चूड़ियों में सुहाग**
**फूटे गुब्बारों में नन्हें दो हाथ**
**कुछ खिलौने, कुछ बर्तन,**
**कुछ कुल्हड़ और कपड़े**
**देख कर सोचती है नदी**
**उतर गया मेला माघ का**
**सब यूं हीं चले जाएंगे**
**मां को छोड़कर**
**जैसे चले जाते हैं प्रवासी बच्चे।**

# बांस वनों में झूमर नृत्य

असम का नाम लेते ही तीन बातें सामने आती हैं – नदी,नारी और निसर्ग। अत्यंत बारिश के लिए प्रसिद्ध यह क्षेत्र, बादलों का नदीकरण भी करता है। प्रकृति का सौंदर्य तो नयनाभिराम है ही,साथ ही यहां की हरितिमा देख कर लगता है – जैसे यहां हरे रंग की कालीन बिछा दी गई है। चारो ओर जहां तक दृष्टि जाती है –चाहे वह हरियाली वनों की हो,चाय बागानों की हो,या धान खेतों या बांस व बेंत के झुरमुटों की हो – सबुज रंग की धरती की छवि है आसाम।

असम अपनी मौलिक संस्कृति के लिए भी जाना जाता है,इस अंचल के कुछ अपने तीज– त्यौहार, कथाएं,लोक परंपराएं, नृत्य,गायन,वादन हैं,जो पौराणिकता में आंचलिकता का समावेश लिए, एक नयी पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। बिहू के बिना असम की कल्पना नहीं की जा सकती,साल में तीन बार, तीन नामों से मनाया जाने वाला,यह पर्व, मूलत: कृषि जीवन की पर आधारित है, जिसमें फसल तैयार होने की खुशी में स्त्री–पुरुष सामूहिक नृत्य करते हैं। प्रेम का स्फुट काव्य है बिहू, इस अवसर पर गाया जाने वाला यह गीत एक किशोरी के वयरू परिवर्तन का चित्रण है

**आहोते होलाबो पात**
**आमार मोइनाइ बोरोनोटि होलाले**
**लोलि रंग रिहा गात**

अर्थात –(बरगद में आए नये पात/ मेरी बच्ची ने/ बदला अपना रंग/ ओढ़ी लाल रिहा देह पर)

ब्रह्मपुत्र का नाम लिए बिना असम को चित्रित नहीं किया जा सकता। इसका एक नाम 'लोहित' भी है। यह अपने महाबाहु में आकर्षक व निनादी है, इसी नदी के किनारे असम की राजधानी गुवाहाटी बसी हुई है। इसका पौराणिक नाम प्राग्ज्योतिषपुर है। यहां बैठ कर ब्रह्मा जी ने नक्षत्रों और जगत की सृष्टि की थी, यहीं के नीलांचल पर्वत पर कामाख्या देवी का विश्व प्रसिद्ध मंदिर है। असम में विभिन्न जगहों पर मिले वास्तु शिल्प के अवशेषों से यह बात स्पष्ट होती है कि –असम की वास्तु तथा मूर्ति कला शैली का उत्तर भारत की कला शैली से संबंध रहा है।



डा. चौधुरी लिखते हैं कि –' असम में चारो ओर बिखरे पड़े खंडहरों से पता चलता है कि कई स्थानों में एक ही साथ अनेक मंदिर निर्मित हुए थे,उन मंदिरों को शिव, विष्णु, सूर्य, शक्ति, और अन्यान्य देवी–देवताओं के नाम से उत्सर्गित किया गया था।

असम की खेती पहाड़ों पर सीढ़ीदार रूप में,दूर से ही मन मोह लेती है। आदमी की जिजीविषा उससे क्या नहीं कराती –? वह दुरूह क्षेत्रों में जीना – रहना सीख जाता है। छोटे–छोटे खेतों में लहलहाती फसलें,उनके मेड़ों पर केले और सुपारी के पौधे, वहीं कहीं पान की लताओं कमर लचकाती कामरूपी बाला का भ्रम,ये सब कुछ उनके जीवन क्षुधा के स्वरोजगार हैं। मछली इनका मुख्य आहार है, इसलिए हर घर में पोखर देखा जा सकता है। चावल के विविध व्यंजन के आदी हैं यहां के लोग। पान जिसे यहां तांबुल कहते हैं,हर घर का प्रथम स्वागत होता है,जिसे सरई नामक पात्र में परोसा जाता है।

हर घर में 'नामघर' होता है,जो इनका मंदिर होता है।असम के संतों में शंकरदेव और माधवदेव की सामाजिक जन जागृति के अवदान को भुलाया नहीं जा सकता। हथकरघा भी यहां की जीवन शैली में शामिल है। सूती तथा रेशमी वस्त्रों की बुनाई – कढाई लोग स्वयं करते हैं।बांस और बेंत की बने अनेक संसाधनों को आज राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय बाजारों में स्थान प्राप्त हो चुका है।

असम व्यापक रूप से दुनिया की नजरों में अंग्रेजों के चाय उत्पादन के बाद आरंभ हुआ। खेती को कल कारखानों से जोड़ कर,इसे उद्योग और व्यापार के रूप में विकसित किया गया। इन स्थानों को यातायात के साधनों से जोड़ा गया। कृषि कैसे एक औद्योगीकरण में परिवर्तित हो सकती है,यह भी जाना जा सका। इस क्रांतिकारी परिवर्तन में समय और श्रम दोनों की ही आवश्यकता पड़ी। चाय बागानों में काम करने के लिए बहुतायत पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से भोजपुरी भाषी मजदूर लाए गए। इन्हें यह कह कर लाया जाता था कि– आसाम में सोने की पत्ती तोड़ना है।

लोगों को रोजगार का प्रलोभन उन्हें यहां पहुंचाता रहा। यह सिलसिला वर्षों तक चला, लाखों नर–नारी आते गए, उन्हें वापस जाने का योग नहीं बना। वे पीढ़ी दर पीढ़ी यहीं का होकर रह गए।अपनी मूल संस्कृति को अपनाए हुए,अपने भीतर एक असम बसाए हुए,असम की पहचान बन गये हैं ये लोग।

काजीरंगा का जिक्र न हो,ये हो ही नहीं सकता। एक सींग वाले गेंडा यहां के झुरमुटों में,अपनी जीवन शैली को विस्तार दे रहे हैं।

चाय उत्पादन के साथ– साथ उसके क्रय – विक्रय और अंग्रेजों के जाने के बाद बागानों का मालिकाना संभालने की आवश्यकता में राजस्थान के लोगों ने कदम बढाया। असम में बसने के लिए वहां की संस्कृति को अपनाना,तथा उन्हें अपना बनाने के लिए उनकी भाषा को आत्मसात करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य था,जिसे उन लोगों ने सहर्ष स्वीकार किया।

गुवाहाटी, तेजपुर, डिब्रूगढ़, शिलचर आदि अनेक स्थानों पर, सैकड़ों वर्ष पूर्व बसे राजस्थानियों ने पुस्तकालय, मंदिर, स्कूल, सांस्कृतिक मंच, समितियों की स्थापना की।इनके आने के बाद यहां से हिंदी अखबारों का विधिवत प्रकाशन आरंभ हुआ, जो आज लाखों की संख्या में अपनी लोकप्रियता बनाए हुए है। हिंदी को शैक्षिक व बौद्धिक धरातल देने में यह योगदान मील का पत्थर सिद्ध हुआ। धीरे–धीरे ब्रह्मपुत्र के किनारे– किनारे एक राजस्थान बसता गया। चाय, लकड़ी, सुपारी,बेंत,बांस के सामान आदि असम से चल कर, दूर– दूर तक की यात्राएं करने लगे।

असम की खूबसूरती उसकी सम्यक जीवन परंपरा है, जो भी आया असम की वादियों ने उसका स्वागत किया। स्थानीय रीति–रिवाजों में हर प्रांत की विविधता घुलती गई। जनजातियों के मिश्रण का यह क्षेत्र राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बनता गया।

असम के हरे रंगों में राजस्थान के लाल – पीले चटक रंग उसके सौंदर्य में चार चांद लगा गए।



# पुरी महोत्सव रथयात्रा के साक्षी
## (संस्मरण)

हमारे देश के महत्वपूर्ण चारो धामों में से एक है– जगन्नाथ पुरी. जिसके बारे में कहा जाता है कि– जब भगवान को वहाँ बुलाना होता है तो, किसी न किसी बहाने प्रसाद भिजवा देते हैं।

कहावत भी है–'जगन्नाथ के भात को जगत पसारे हाथ'

**ऊं नीलाचले निवासाय नित्याय परमात्मने.**
**बलभद्र सुभद्राभ्याम् जगन्नाथये ते नमः।**
**जगदानंद कंदाय प्रणतार्त हराय च.**
**नीलाचल निवासाय जगन्नाथय् ते नमः।।**

मेरे बचपन की यादों में मेरे माता– पिता के पुरी की रोमांचक यात्रा का विवरण याद है मुझे, तब हम छोटे थे और साथ नहीं जा सके थे। विग्रह के सौंदर्य का वर्णन करते मां ध्यान में डूब जातीं, पर दो घटनाऐं बहुत सुनातीं थीं।

एक बार वहाँ समुद्र के किनारे लहर लेते समय उनकी चप्पलें बह गईं और निराश होने से पहले ही भद्र पुजारियों ने बताया कि अगली लहर में आपकी चप्पलें वापस आ जाएंगी.,ये क्या सचमुच चप्पलें लौट आईं।

मुझे भवानी प्रसाद मिश्र की उक्ति याद आ रही है––'समुद्र किसी से कभी कुछ नहीं लेता।'

दूसरी घटना में सुदूर पूर्व में जाकर सूर्य का लाल समुद्री घोल बनना, जिसे वो तीन दिनों तक लगातार देखतीं थीं सुबह उठकर।

मेरे लिए खजूर के पत्तों की हैट लेकर आई थी, जिसे मैं रात में भी पहनकर सोती।

इस वर्तमान पुरी की स्थापना जगतगुरू शंकराचार्य ने करवाई थी। जो देश के चारों दिशाओं में स्थापित चारों धामों में एक है, जो हमारी राष्ट्रीय एकता को प्रमाणित करता है।

वर्ष 1995 में शैक्षिक आयोजन में प्रोफेसर नित्यानंद जी को भुवनेश्वर विश्वविद्यालय जाना था , तो ये प्रस्ताव रखा गया कि मुझे भी चलना है और हम टिकट की व्यवस्था नहीं हो पाने पर कार से निकल पड़े। पांडेय साहब को गाड़ी चलाने में महारथ हासिल था। उन दिनों हम महाराष्ट्र के चंद्रपुर शहर में रहते थे।

पहले दिन हम रायपुर पहुंचे तनुजा झा हमारी बहन की तरह थीं , उनका आतिथ्य स्वीकार किए। उनके सौजन्य से अतिथि गृह मिल गया और आराम से रात बिता कर, बरगढ, संबलपुर, कालाहांडी ,कटक होते हुए भुवनेश्वर पहुंचे। हमारे साथ प्राध्यापक भड़के साहब और प्रिंसिपल टेंभरे साहब भी सपत्नीक आये थे. रास्ते में रोचकता बनी रही।

वहाँ का सम्मेलन पूर्ण होने पर हम पुरी की ओर बढ़े। कटक में सोने के गहनों की कलाकारी मुग्ध करती रही। उड़ीसा का खानपान, रहन–सहन बहुत सामान्य, सरल और अव्यावसायिक लगा। हर होटल में भात और विविध साग– सब्जी खाकर मन तृप्त होता रहा। भाषा समझने में भी कोई असुविधा नहीं हुई। विश्वविद्यालय ने हमें घुमाने के लिए दो सदस्य भी दिए थे। भोजन रूपी प्रसाद अमृत की तरह लगा।

पुरी महोत्सव की धूम चारों ओर दिख रही थी। किसी पंडा– पुजारी से हम ठगे नहीं गए। पुरी की रथयात्रा रोचक और ज्ञानवर्धक थी। आस्था के साथ सामाजिक सरोकार भी परिलक्षित होता है। वैशाख शुक्ल तृतीया को रथ– निर्माण आरंभ हो जाता है। तीनों रथ बनने लगते हैं। ये तिथियाँ पहले से तय हैं। सबसे बड़ा रथ जगन्नाथ भगवान का सोलह पहिए और साढे तेरह मीटर का होता है, जिसे 832 लकड़ियों के टुकड़े से बनाया जाता है। इन्हें कृष्ण का रूप माना जाता है। साथ में बलराम और सुभद्रा के रथ भी होते हैं, जो जगन्नाथ के रथ से छोटे होते हैं। इस यात्रा के दरम्यान भगवान मौसी के घर जाते हैं , जो गुडीचा बाड़ी ( मौसी के घर) नाम से जाना जाता है, और एक सप्ताह बाद लौटते हैं। इसे देखना, जुड़ना, और रथ खींचना 100 यज्ञों का पुण्य देता है। वैशाख पूर्णिमा को मूर्तियों को बाहर लाकर 108 घड़ों से स्नान कराया जाता है। फिर भक्त का कोमल हृदय यह अनुभूति करता है कि– बहुत अधिक नहा लेने से भगवान को ठंड लग गई है,अतः उनकी विश्राम चिकित्सा की जाती है। इसके बाद वे रथ में



सवार होते हैं, और सब ईश्वर की संतान हैं ऐसा मान कर राजा स्वंय सोने की झाड़ू से सड़क बहारते हैं। चलने से पहले उनसे मनुहार किया जाता है कि–– प्रभु आपको यात्रा पर चलना होगा। और यह रथयात्रा भक्त गुडीचा बाड़ी के घर जाता है, जिसे मौसी के घर जाना कहते हैं, जो भक्त इन्द्रद्युम्न की पत्नी हैं ,दस दिनों तक यह विग्रह वहीं रहता है, फिर उलटे रथ की परंपरा है. कुछ लोग इस दिन व्रत भी रहते हैं।

इस रथयात्रा को देखने देश–विदेश के लोग एकत्र होते हैं। इनकी संख्या करोड़ों में होती है। इस मंदिर का निर्माण कलिंग वास्तु शिल्प पर हुआ है। भगवान को छप्पन भोग लगाया जाता है। इनको मौसम के अनुसार भोज्य व्यंजन दिये जाते हैं। इस मार्ग पर नंगे पैर चलने का विधान है। उस समय तिल रखने की जगह नहीं होती है। यहाँ भगवान को 'नील माधव' के नाम से जाना जाता है. इन्हें शबर जनजाति के लोग अपना ईष्ट मानते हैं।

ऐसी मान्यता है कि सतयुग में स्थापित इस मंदिर का निर्माण इन्द्रद्युम्न ने बनवाया था, महाभारत के नवम् सर्ग में इसका वर्णन आता है।1174 में अनंग भीमदेव ने इसका जीर्णोद्धार करवाया। 7 वीं सदी में निर्मित यह मंदिर आज तक उपलब्ध है।

इन्हें राम के रूप में भी स्वीकार किया गया है। यहीं विभीषण ने राम की आराधना से पितरों का उद्धार किया.। इस भव्य पुरी की रक्षा में स्वंय श्री हनुमान जी रहते हैं। इस बात की पुष्टि स्कंद पुराण में होती है। यहाँ पर हर तरह की रक्षा और संरक्षण के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश की पूजा की जाती है, जो सब ओर से संरक्षा करते हैं और समुद्र की ओर से हनुमान जी संभाले हुए हैं। पहले अनेकों बार इस मंदिर को समुद्र से घातक क्षति मिली, तो लोगों के अनुनय–विनय पर हनुमान जी आठों पहर तैनात रहते हैं। अधूरी मूर्तियों की पूजा भी इसे अलग कीर्तिमान बनाती है. यहाँ हवा समुद्र से धरती की ओर न चलकर धरती से समुद्र की ओर चलती है. इसकी ध्वजा हवा के विपरीत दिशा में लहराती है, जिस पर शिव का चंद्रमा अंकित है। इस मंदिर की छाया कभी नहीं बनती। 224 फिट ऊंचा मंदिर का शीर्ष भव्य और भवन– शैली का उत्कृष्ट नमूना है। इस मंदिर का सुदर्शन चक्र भी अनूठा है. उसे आप किसी भी दिशा से देखिए, समान गोलचक्री ही दिखाई देगा। इसे नील चक्र भी कहते हैं.

इसके गुंबद पर कोई पक्षी नहीं बैठता, इसके ऊपर से विमान भी नहीं उड़ाया जाता है । वर्षो बाद अगर कोई पक्षी बैठ जाए तो उसे ईश्वर की कृपा मानते हैं। इसे नीलाचल क्षेत्र कहते हैं.।

दुनिया का सबसे बड़ा रसोईघर भी यहीं है, जहाँ 20000 हजार से 50000 लोग प्रतिदिन भोजन प्रसाद ग्रहण करते हैं। यह भोजन लकड़ी के बर्तनों में पकाया जाता है, जिसे लोग घर भी ले जाते हैं। आश्चर्य वाली बात है कि जिस समुद्र का शोर हाहाकार करने वाला होता है, वह परिसर में तनिक भी नहीं सुन पड़ता .और वहाँ किसी तरह की दुर्गंध भी नहीं आती, जब की समीप ही लाशों पर लाशें जल रहीं होतीं हैं. यह काष्ठ प्रतिमाएं दिन भर अपना रूप बदलती रहतीं हैं. इन मूर्तियों को प्रत्येक 12 साल बाद बदल दिया जाता है। यह विश्व की सबसे लंबी रथयात्रा मानी जाती है.

कृष्ण के रथ को –– नंदीघोष
बलराम का रथ–– तालध्वज
सुभद्रा का रथ –– सर्प दलन

माना गया है. अनेक बार तोड़ा गया यह मंदिर को भविष्य में कोई खतरा समुद्र और शत्रुओं द्वारा न हो, इसलिए हनुमान जी को स्वर्ण बेड़ी से बांध कर स्थापित किया है, जिसकी वहाँ बहुत मान्यता है। विश्व में बंधें हुए हनुमान मंदिर इकलौता मंदिर है। उसके बाद उन्होंने हवा का विवर्तन बना दिया. यहाँ पांडव भी अज्ञातवास में आये थे, जिसकी नारायण सरोवर पुष्टि करता है. काश्मीर के राजा रणबीर सिंह ने यहाँ अथाह सोना का दान किया था.आदिगुरू शंकराचार्य ने यहाँ गोवर्धन मठ की स्थापना की. इस मंदिर में गैर हिंदु के प्रवेश पर प्रतिबंध है. परिसर में हर तरह की पूजन सामाग्री, खिलौने, पीतल की मूर्ति, बर्तन, झाल, बाँसुरी, मुकुट बिक रहे होते हैं.

हमने यात्रा के समस्त उपादानों को तय किया और न चाहते हुए भी लौटना पड़ा. उड़ीसा के लोग शांतिप्रिय और ईमानदार हैं. विश्व का यह पहला मंदिर है, जहाँ भाई बहन के साथ कृष्ण की पूजा होती है, जो पारिवारिक एकता का प्रतीक है।

**जगन्नाथ जी बस रहे पूरब उत्कल धाम।**
**बहन सुभद्रा साथ ही पूजित हैं बलराम।**



# डा. राजेंद्र की रचनाएं शास्त्रीय और देशज भी

डा राजेंद्र की रचनाएं नदी के उस दो किनारों जैसी हैं, जिसके एक छोर पर शैक्षिक, संभ्रांत शहरी दुनिया है तो, दूसरी तरफ खेत– खलिहान, मड़ैया, बाग– बगीचा, काली चौरा, ताल– तलैया और बगुलों वाली कहानियों के गांव जैसे 'दूधपतली'। दोनों ही किनारे अपने–आप में आवश्यक और परिपूर्णता के लिए संपृक्त हैं। इनमें परिष्कृत अभिव्यंजना के साथ समुचित संभावना के परिलेख दृष्टिगोचर होते हैं। इस साहित्यिक उन्मुक्ति का कारण भी सहज है। एक ओर कवि जहां अपनी प्रशासनिक दायित्वों के लिए शहरी संशोधन की भूमिका में है तो, दूसरी ओर उनके मन का गांव उनसे कभी दूर ही नहीं होता। यही है नदी में नदी की नाव ।

कहीं वेद है तो कहीं लोकगीत ,कहीं छंद है तो कहीं कहीं लोकरंजना। दोनों के साथ सामंजस्य को नापती उनकी कलम विलक्षण प्रयोगधर्मिता के साथ न्याय करती चलती है। यही वृत्तावली उनके गद्य और पद्य दोनों में देखी जा सकती है। उनकी पुस्तक 'नदी में नदी ' के गीतों की चर्चा करते हुए वे परिष्कृत गीत व लोकगीत की विवेचना करते हैं।

**नदी में छिप कर नदी खोती नहीं है**
**देख लो पर्दा उठाकर झांकती है**
**यह फफोला एक जिसमें भरा पानी**
**एक टपकन जो न सोती जागती है**
**उगाया सींचा बढ़ाया है जिन्हें खुद**
**आज उनसे नदी पानी मांगती है।**
**एक चुल्लू भर उधार जरा पिला दे**
**लाख दूंगी बाद ये समझा रही है।**

कन्या को हमारी संस्कृति में रत्न माना गया है। कन्याओं पर आए गुरूतर दायित्व , सहनशील, समायोजन, और त्याग का पर्याय है नारी। यहाँ पारंपरिक मन करूणा से विचलित है किंतु नारी का महिमामंडिन करता

है। कवि भी कन्याओं के त्याग और समर्पण की सराहना एक बेल से करते हुए लिखते हैं––

**इस घर के भीतर उग आई**
**उस घर के छज्जे पर जा छाई**
**फल– फूलों वाली तू लतिका**
**अपनी ही रहेगी पराई**
**कच्ची लकड़ी की तू थूनी**
**छज्जे का भार ढो रही है।**

डॉ पांडेय का पीड़ित मन प्रतिशोध का व्यंग्य लिखने में सदा निर्भीक रहा और यह प्रमाणित करता रहा कि लेखकीय कर्म चाटुकार बनने के लिए नहीं, साहस की स्याही में डूबी कलम से निष्पक्ष अक्षरों के उद्घाटन के सरोकार के लिए होता है।

सत्ता की रामलीला के पात्रों के माध्यम से वे विलाप करते सात्विक विचारों के लिए आकुल होकर लिखते हैं––––––श

**कब से चल रही राम– लीला**
**शासन के सूत्रधार पोत रहे**
**चेहरों पर रंग लाल – पीला**
**बाहर से उत्तेजक दृश्यों का**
**भीतर से करते संचालन**

**नयी रामलीला में राम मात खा गए**
**जीत गये लोकप्रिय दशानन**

दशानन की लोकप्रियता समाज से अनेक सवाल करना चाहती है–??

प्रत्यय और उपसर्ग बहुत पढ़ाया जाता है, ये दोनों ही आगे पीछे लग कर अर्थ परिवर्तन करते हैं। या तो बढ़ाते हैं या घटाते हैं। कवि ने प्रत्यय को साधा है, और झूठ– सच के माध्यम से इन दोनों के परस्पर लिबास



बदलने का व्यंग्य लेकर कहते हैं–

**झूठ और सच ने की दोस्ती**
**बदल लिए परस्पर लिबास**
**ज्वारों के भुट्टों से भरा है**
**हरियाया चौड़ा आकाश**
**फुट लेकर खड़ा समय नाप रहा**
**लोगों के सीनों की सांस**
**दाँतों को चबा गई ऊंगलियां**
**प्रत्यय यह ,यही है आभास ।**

इसमें दो विरोधी मित्रता के प्रतिफल में दांत ही ऊंगलियों का भक्षण कर रहे हैं।

बसंत और शरद के चित्रण से साहित्य पटा है। पावस भी बरसात की तरह स्याही बन कर उतरा है।

हेमंती का मन बढ़ी होना, और उस पर क्वारी धूप का छिपना इस शंका में कि कहीं इसकी संगत मुझे भी अनियंत्रित न बना दे। पर एक हेमंती रात की उपेक्षित छवि , जो रसवंती, रंगीन, और गुनगुनी धूप का साक्षी बन कर आती है, उसे शब्द– चित्र में देखिए––––––

**रात हेमंती**
**आ गई है पास कितने रात हेमंती**
**मौन बोले जा रही है बांह लजवंती**
**देख कर इस मन बढ़ी को उधर छिप ली।**
**टूटती जाती कुंवारी धूप दुबली**
**किंतु फैली गंध तन की रह गई है।**
**गुनगुनी, रंगीन, रसवंती**

गांव के विषय आपके सृजन में सर्वत्र पाए जाते हैं। इस परिवेश को कवि ने खूब जिया भी है, केवल छूने भर को नहीं, आत्म– अनुबंध से। जैसे कोई अपनों के साथ रहता है। गांव की अच्छाईयों पर मुग्ध होता मन, उसकी विसंगतियों पर विकल भी होता है।क्यों कि वह अपना है। वह उसे किसी

परीक्षक या विश्लेषक की तरह नहीं टटोलती, बल्कि उसके पास बैठ बतियाता है। उसकी गतिविधियों का मूल्यांकन करता है, फिर लिखता है, उसके विकास की कहानी जो उसे मिटाने पर आमादा है–––––

**एक गांव**
**एक गांव बस रहा सलोना**
**नदी नार के तीरे**
**है विकास का भूत चढ़ रहा जिस पर धीरे धीरे।**

**बोरका– पट्टी, कांपी, फीस,**
**मास्टर– मास्टरनी के खीस**
**गाइड, गेस पेपर, सिगरेट**
**नकल, लडाई, रिस्टीकेट**
**डिप्टी, बाबू, इंस्पेक्टर**
**पास कराई पैसा धर**
**पढ़े लिखे से कुछ ना होई**
**हर जोते से बेरी होई**
**पानी पागुर करती सिच्छा की भैंस पडी रे!**
**है विकास का भूत चढ़ रहा**
**जिस पर धीरे – धीरे।**

डा. राजेंद्र गीतों के लिए किसी सीमा का आवंटन नहीं करते, कोई दीवार खड़ी नहीं करते, उनमें वो सब कुछ है, जो जीवन में है। उसमें अपने मूल से आकर्षण भी है और वर्तमान के व्यग्रता पर कटाक्ष भी। संतुलन कहीं नहीं बिगड़ता। कवि हर हाल में कविता को परजीवी होने से बचाते हैं और उसके आत्मजीवी मूल्यबोधों को उद्घाट्य करते हैं।

'गीत ने धरती के सभी जीवों से उतनी ही संवेदना उगाही है, जितनी ललित कलाओं ने। वह आज भी संशय– ग्रस्त मनुष्यता का राजदार भी है। गीत मनुष्यता को ऐसा सब कुछ देने को तैयार है, जैसी उसकी मांग है। वह आज पूरी दुनिया में चल रही उठा– पटक, पैंतरेबाजी, दिखावा और आन्तरिक तथा बाह्य अन्तर्द्वन्दों का भी साक्षी है। यह भी सच है कि गीत,



कविता की अपेक्षा कुछ खास प्रकार के आदिम संस्कारों से अपने को जोड़े हुए है, जो उसकी शक्ति भी हो सकती है और सीमा भी।'

एक रचना––'डूब रहे सूर्य लो प्रणाम' सूर्य को कर्म का प्रतीक मान कर, उससे कल फिर आने का निवेदन में, ऊबे और हतोत्साहित लोगों के लिए प्रकाश प्रतीक है–– नवजीवन, नव संकल्प का।

**जो प्रकाश या तम में डूबे**
**तड़प रहे अपने में ऊबे**
**कह दो आराम है हराम**
**फिर आ जाना कल के भाई**
**अंतिम हो नहीं यह विदाई**
**सलटाने हैं कितने काम।**

कवि का प्रकृति के प्रति जो लगाव है ,वह वैयक्तिक न होकर पारंपरिक उन्मेष के लिए मुखर होता है, बसंत के शाशवत और शास्त्रीय स्वरूप को वे गावठी जामा पहनाकर गूंगी इच्छाओं को मुखर करते हैं–

**मधुगंधी बौरों के दिन आये।**
**फूले सरसों, अलसी, मटरों के बिरवा**
**छोर पकड़ गंधों की उड़ी हवा पुरवा**
**झूम रहे भौरों के दिन आये।**

**मंगनी के दिन ,माटी पूजन के दिन आये।**
**अन्नप्राशन पाटी– पूजन के दिन आये।**
**गूंगी इच्छाओं ! शोरों के दिन आये।**

श्रीप्रकाश शुक्ल जी लिखते हैं कि––'जाहिर सी बात है, इस सांस्कृतिक उजास में हाथों की बड़ी भूमिका है जिसका मतलब श्रम की संस्कृति से है जिसको इस संग्रह की अन्य कविताओं में भी दर्ज करता है। कवि की नदी से जुडी ये वे कविताएं हैं, जिसमें वह नदी के ठहर जाने अथवा अवरूद्ध हो जाने की पीड़ा से परेशान होता है। वह चाहता तो है कि उसके अपने आंतरिक श्रम व उजास में एक नदी लगातार बहती रहे, लेकिन सभ्यता के अंध विश्वास क्रम में ऐसा हो नहीं पाता और यही एक नदी के सूखने का

कारण है। उनकी अनेक कविताओं में कवि नदी के छीजे प्रवाह से विचलित है। वह चाहता है कि नदी निरंतर प्रवाहित होती रहे। क्यों कि नदी का बहना असल में संस्कृति के प्रवाह का बने रहना है। इस रूप में कवि की संवेदना नदी प्रवाह की संवेदना है।'

**हालाँ कि सभी**
**जन उत्सवों से अभी भी आग दार पानी झर रहा है।**
**फिर भी नन्हीं मुट्ठियों की मार से**
**मछली सा तड़प – तड़प**
**तिल– तिल कर**
**सारा पानी मर रहा है।**



# रामचरितमानस में गुरु–संस्कार

भारतीय संस्कृति में गुरू का स्थान बहुत उच्च और श्रेष्ठ माना गया है। वह मनुष्य के जीवन को शरीर नहीं रहने देता। कायेत्तर जगत में ले जाकर वह इस नश्वर शरीर को शाश्वत बनाता है, जो मनुष्य का अभिष्ट और अंतिम लक्ष्य होता है। संसार की अभिप्साओं से इतर भी सोचने की दृष्टि देता है, जिसे हम ज्ञान कहते हैं। ज्ञान प्रकाश का स्वरूप है। जैसे प्रकाश की उपस्थित में सब कुछ स्पष्ट और यथार्थ दिखने लगता है। वैसे ही गुरू के सान्निध्य में प्राप्त ज्ञान हमारे मानवीय अंतर्निहित गुणों का विकास होता है। हम काया और माया के जगत में कुछ अलौकिक तत्वों के अनुसंधान की ओर अग्रसर होते हैं। इसीलिए कहा गया है–

**गुरू ब्रह्मा गुरू विष्णु गुरू देव महेश्वर।**
**गुरू साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरूवे नमः।**

यद्यपि किसी व्यक्ति की प्रथम गुरू मां होती है, जहाँ संस्कारों के बीज बोए जाते हैं। भाषा का प्रादुर्भाव होता है। परिवार के अनुशासन की पाठशाला है मां। गुरू इन गुणों को पल्लवित– पुष्पित कर बालक का सामाजिक रण करता है। अब वह समूह में जीना– रहना सीखता है। और गुरू कुम्हार की तरह उसे तराशता जाता है। उसके गुणों के माध्यम से उसका विकास और कार्यक्षेत्र का निर्धारण करने में सहयोग करता है। वह सद्गुणों की परख कर उसे गढ़ता है फिर उसे सांस्कृतिक रूप विकसित करता है और दुर्गुणों का नाश करता है। इसीलिए उसे ब्रह्मा, विष्णु और महेश की संज्ञा दी गई है।

**गुरू ब्रह्मा गुरू विष्णु गुरू देव महेश्वर।**
**गुरू साक्षात परमेश्वर तस्मै श्री गुरूवै नमः।**

गुरू केवल साक्षरता का पोषक नही होता। ना ही केवल पाठ्यक्रम को पूरा कर अपने दायित्व को परिपूर्ण करता है। साक्षरता तो पहला सोपान है। आगे वह जीवन के रहस्यों का पटाक्षेप करता है। पुस्तक के अलावा अपने आचरणों से सिखाता है। उसका दायित्व वर्ग पूरा होने पर समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि आजीवन तादात्म्य बना रहता है, क्यों कि

वह जीवन– पाठशाला का समर्थवान शिक्षक होता है। रामचरितमानस में गुरू की विस्तृत विवेचना की गई है। उसके आदर्शो, दायित्वों और सामाजिक दायित्वों को पूरा करने के लिए, उसे समय–समय पर आमंत्रित किया जाता है। उसकी वंदना से ही मानस का आरंभ हुआ है, जिसमें उसकी विशेषताओं का गुणगान किया गया है। तुलसीदास जी लिखते हैं –

**बंदउं गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।**
**महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।**
**बंदउं गुरुपद पदुम परागा, सुरूचि सुबास सरस अनुरागा।**
**अमिय मूरिमय चूरन चारु, समन सकल भव रुज परिवारू।**
**सुकृति शंभु तन बिमल बिभूति, मंजुल मंगल मोद प्रसूती।**
**जन मन मंजु मुकुर मल हरनी, किए तिलक गुन गन बस करनी।**
**श्री गुरु पद नख मनि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।**
**दलन मोह तम सो सुप्रकासु, बड़े भाग उर आवइ जासू।**
**उघरहिं बिमल बिलोचन ही के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।**
**सूझहिं रामचरितमानस मनि मानिक, गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।**
**जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।**
**कौतुक देखत सैल बन, भूतल भूरि निधान।**
**गुरू पद रज मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष बिभंजन।**

अर्थात– मैं उन गुरू महाराज के चरण कमल की वंदना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर रूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार के नाश करने के लिए सूर्य – किरणों के समूह हैं। मैं गुरू महाराज के चरण कमलों की रज की वंदना करता हूँ, जो सुरूचि सुबास और अनुराग के रस से परिपूर्ण हैं। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चूर्ण हैं, जो संपूर्ण भवरोगों के परिवार को नाश करने वाला है। गुरू रज सुकृती (पुण्यवान पुरूष) रूपी शिव शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति है और सुंदर कल्याण और आनंद की जननी है। भक्त के मन रूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली है और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है। श्री गुरु महाराज के चरण– नखों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है, जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है। वह प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला है, वह जिसके हृदय में आ जाता है, उसके बड़े भाग्य हैं। उसके



हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष– दुख मिट जाते हैं, एवं रामचरित रूपी मणि और माणिक्य, गुप्त और प्रकट जहां जो जिस खान में है, सब दिखाई पड़ने लगते हैं। जैसे सिद्धांतांजन को नेत्रों में लगा कर साधक, सिद्ध और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के अंदर कौतुक से ही बहुत सी खानें देखते हैं। श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत –अंजन हैं, जो नेत्रों के दोषों का नाश करने वाला है। उस अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं संसार रूपी बंधनों से छुड़ाने वाले श्री राम चरित्र का वर्णन कर रहा हूँ।

राजा दशरथ के प्रकरण में भी अनेक मार्मिक प्रसंग हैं, जब गुरू वशिष्ठ को अपना वरेण्य मान कर उनसे सलाह और समर्थन लेते रहते हैं। जब लंबे समय तक उन्हें कोई संतान नहीं होती तब वे निराश होकर गुरू का आश्रय लेते हैं।

**एक बार भूपति मन माहि भै गलानि मोरे सुत नाहीं।**
**गुर गृह गयउ तुरत महिपाला, चरन लागि कर विनय विशाला ।**
**निज दुख सुख सब गुरूहिं सुनायउ, कहि बसिष्ठ बहुबिधि समझायउ।**

गुरू अपने शिष्य के हर प्रकार के संतापों का शमन करता है। और उसके सुख समृद्धि के सुयोग बनाने का यत्न भी करता है।

मनुष्य के सोलहों संस्कारों में गुरू का सामिप्य अनिवार्य है। जन्मोत्सव में सब प्रकार से मंगलादि संपादित करके पुनः नामकरण में उनका आगमन होता है। और सभी बालकों की गुणवत्तायुक्त नामकरण होता है।

**नामकरण कर अवसरु जानी, भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी।**
**करि पूजा भूपति अस भाषा, धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा।**
**इन्ह के नाम अनेक अनूपा, मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा।**
**लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।**
**गुरु बशिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।**
**धरे नाम गुर हृदय बिचारी, बेद तत्व नृप तव सुत चारी।**

कुमारावस्था में पुनः गुरू यज्ञोपवित संस्कार करवा कर, उन्हें धर्म

और ब्रह्मचर्य से युक्त शिक्षा की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं।

**भए कुमार जबहिं सब भ्राता, दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।**

उस समय गुरु के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करने का प्रावधान था। मानस में भी इसका उल्लेख है और राम जब विद्यारंभ करते हैं तो, बहुत कम समय में ही वे समस्त विद्याओं में निपुण हो जाते हैं।

**गुरुगृह गए पढ़न रघुराई, अलप काल बिद्या सब आई।**
**जाकी सहज स्वास श्रुति चारी, सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी।**

राजा के पुत्र होने के बावजूद उनकी दिनचर्या में गुरु दिनचर्या का प्रथम अंग थे।सबसे पहले उनका अभिवादन करना ही उनका कर्तव्य था।

**प्रातकाल उठि कै रघुनाथा, मातु पिता गुरु नावहिं माथा।**

गुरू का स्थान सर्वोच्च और पूज्य था, किसी प्रकार के उत्सव, समारोह और मांगलिक संस्कारों में उन्हें उच्च आसन और संसाधन दिए जाते थे। राम– विवाह के लिए जनकपुर जाते समय गुरू वशिष्ठ की सवारी का वर्णन इस प्रकार से किया गया है।

**तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी, जोते रबि हय निंदक बाजी।**
**दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने, नहिं सारद पहिं जाहिं बखाने।**
**राज समाजु एक रथ साजा, दूसर तेज पुंज अति भ्राजा।**
**तेहि रथ रुचिर बसिष्ठ कहुं हरषि चढ़ाई नरेसु।**

(अर्थात– दोनों सुंदर रथ वे राजा दशरथ के पास ले गए, जिनकी सुंदरता का वर्णन सरस्वती से भी नहीं हो सकता। एक रथ पर राजसी सामान सजाया गया था और दूसरा जो तेज का पुंज और अत्यंत ही शोभायमान था।उस सुंदर रथ पर राजा गुरु बशिष्ठ जी को हर्षपूर्वक चढ़ा कर अपने रथ पर चढ़े।

इसी तरह राज्याभिषेक के समय गुरू वशिष्ठ के सम्मान और वरीयता का चित्रण कुछ इस तरह किया गया है। गुरू राजकीय कार्यो का भी सलाहकार, नियंत्रक, स्वस्तिवाचक, शास्त्रीय विधि–विधान का नियंता होता था।साथ ही राजा और प्रजा के खुशहाली के लिए अर्चना– पूजा में संलग्न रहता था। प्राकृतिक संतुलन के लिए उसके प्रयास जारी रहते थे।



**प्रथम तिलक वशिष्ठ मुनि कीन्हा, पुनि सब भाइन्ह आयसु दीन्हा।**

गुरू की भूमिका केवल अक्षर–ज्ञान तक सीमित नहीं थी।वह ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण करता था, जो देश और समाज के लिए अपने दायित्व पूरे करने में अग्रणी हो। परोपकारी, न्यायप्रिय, संस्कारी और निष्कलुष शिष्यों की संरचना उसकी प्राथमिकता होती थी।तुलसीदास जी लिखते हैं–

**हरइ शिष्य धन शोक न हरइ**
**सो गुरू घोर नरक महु परइ।**

गुरू हमारे विकारों को हरने का हर संभव प्रयास करता था।क्षमा, उदारता, शीलवान, निर्भीक गुणों से युक्त गुरू शिष्यों के अपराध को लेकर संवेदनशील रहता था और प्रार्थना भी करता था।

**गुर नित मोहि प्रबोध दुखित देखि आचरन मम।**
**मोहि उपजइ अति क्रोध दंभित नीति कि भावई।**
**एक बार गुरू लीन्ह बुलाई , मोहि नीति बहु भांति सिखाई।**
**सिव सेवा कर फल सुत सोई, अबिरल भगति राम पद होई।**
**एक बार हरि मंदिर जपत रहेऊँ हरि नाम।**
**गुर आयउ अभिमान ते उठि नहिं कीन्ह प्रनाम।**
**सो दयाल नहिं कहेउ कछु , उर न रोष लवलेस।**
**अति अघ गुर अवमानता सहित नहिं सके महेस।**

गुरू का सम्मान सर्वोपरि है।उसके अपमान को शिव भी सहन नहीं कर सकते।

इस तरह रामचरितमानस में गुरु का स्थान सर्वोच्च और देदीप्यमान है। वह विषयों का ज्ञान तो देता ही है। साथ ही शिष्य को एक सभ्य नागरिक, राष्ट्र के लिए समर्पित जीवन जीने वाला, परोपकारी और विश्व बंधुत्व की भावना से उत्प्रेरित मानव बना कर, उसे दैविक, दैहिक, भौतिक तापों से मुक्त करता है।

**डॉ शुभदा पांडेय।**
(वरिष्ठ साहित्यकार व शिक्षाविद्)
आगरा– उत्तर प्रदेश

# पुस्तक चर्चा

**भूटान के हर पहलू को समर्पित:– पन्नाई यादों का कल्पतरु : भूटान**
**पन्नाई यादों का कल्पतरु : भूटान / मूल्य 275**
**लेखिका : डॉ. शुभदा पांडेय**
**हिंदी श्री पब्लिकेशन, भदोही (उ.प्र.)**

भूटान कई मायनों में अद्‌भुत देश है। विशेष रूप से पर्यावरण को पूजने वाला यह देश अपनी संस्कृति और सभ्यता में अनूठा है और संपूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय भी। 'पन्नाई यादों का कल्पतरु : भूटान' वरिष्ठ लेखिका डॉ. शुभदा पांडेय की 35वीं कृति है। आप लगभग चार दशकों से गद्य–पद्य की अनेकश: विधाओं में सतत लेखन कर रही हैं। प्रस्तुत कृति अपने महत्व के कारण 'गोल्डन बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड' में स्थान का चुकी है।

पुस्तक एक नजर में यात्रा संस्मरण का आभास देती है, किंतु ऐसा नहीं है। लगता है जैसे भूटान लेखिका की रग–रग में उतर आया है। इस किताब में भूटान के नामकरण से लेकर भूटान के महाराजा, महोत्सव, नदियां, प्राकृतिक सौंदर्य, भूटान की फसलें, सब्जियां–फल, राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय खेल तीरंदाजी, राष्ट्रीय पेड़, लामा नृत्य, राष्ट्रीय पोशाक, पूजा महोत्सव, मूर्ति भवन–शिल्प कला, भूटान और बौद्ध दर्शन, डाक व मास मीडिया, पर्वत और गुफाएं, भूटान के गांव आदि के साथ ही वहां के संत और महान लोगों और लोक कथाओं द्वारा भूटान के गौरव का जो आख्यान प्रस्तुत किया गया है, उसके लिए लेखिका निश्चित रूप से बधाई की पात्र हैं।

यह किताब प्रेरित करती है कि अगर आपके पास साधन और समय है तो आपको एक बार भूटान की यात्रा अवश्य करनी चाहिए।

किताब में प्रकाशित चित्रों ने किताब को और रोचक व दर्शनीय बना दिया है, हालांकि श्वेत– श्याम रंग में होने के कारण कुछ चित्रों की स्पष्टता संदिग्ध है, तथापि चित्रों ने किताब के महत्व को द्विगुणित किया है।

अगर आप भूटान की यात्रा पर निकलने की तैयारी में हैं तो 'पन्नाई यादों का



कल्पतरु : भूटान' को अपना सहयात्री बनाइए। निश्चित रूप से आपकी यात्रा सहज, सुगम और रोचक हो जाएगी और वापसी में भूटान को बहुत कुछ अपने अंतस में बसा कर लौटेंगे। भूटान पर शोध करने वालों के लिए भी यह किताब अमूल्य निधि की तरह है। भाषा का प्रवाह आपको इस कृति को अंत तक पढ़ा कर ही दम लेगा।

**अशोक 'अंजुम'**
संपादक : अभिनव प्रयास (त्रैमासिक)
स्ट्रीट–2, चन्द्र विहार कालोनी (नगला डालचंद) क्वारसी बायपास, अलीगढ़–202002 (उ.प्र.)
मोबाइल : 9258779744

# नैसर्गिक सौंदर्य की अलौकिक आभा का दर्पण
# पन्नाई यादों का कल्पतरू : भूटान

यशस्वी शिक्षाविद् एवं वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. (प्रो.) शुभदा पाण्डेय की सद्य प्रकाशित कृति 'पन्नाई यादों का कल्पतरु : भूटान' मुझे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हिंदी श्री पब्लिकेशन भदोही (उ. प्र.) से प्रकाशित, 120 पृष्ठों की इस पुस्तक का मूल्य रु. 275 मात्र है । पुस्तक का मुख पृष्ठ आकर्षक है जो भूटान के विविध रूपों की झांकी प्रस्तुत करता है । यह यात्रा वृत्तांत संस्मरण के रूप में सर्जित एक अद्भुत कृति है जो भूटान के प्राकृतिक सौंदर्य, पशु–पक्षी, कृषि–व्यवसाय, संस्कृति–संस्कार, सामाजिक पर्व–महोत्सव, रीति–रिवाज, राजनीतिक व्यवस्था, रहन–सहन, खान–पान और वेशभूषा आदि के सम्बंध में विस्तृत जानकारी देती है । यह पुस्तक किसी देश विशेष में की गयी यात्रा का विवरण मात्र नहीं है अपितु एक कुशल साहित्यकार की हिंदी साहित्य के प्रति निष्ठा, मानवीय जिज्ञासा, संवेदना, लेखन की अन्वेषणीय प्रवृति, शोधपरक कर्मठता एवं सामाजिक सहिष्णुता का अद्भुत उदाहरण है ।

सेवरही, कुशीनगर (उ. प्र .) में जन्मी, महाराष्ट्र, असम एवं राजस्थान के विश्वविद्यालयों में शैक्षिक अनुदान प्रदात्री, वर्तमान में आगरा निवास कर रहीं, चार बार 'गोल्डन बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स' द्वारा सम्मानित डॉ. शुभदा पाण्डेय एक वरिष्ठ साहित्यकार एवं विद्वान शिक्षाविद् होने के साथ सौम्य–शालीन व्यक्तित्व एवं अत्यंत विनम्र स्वभाव से विभूषित हैं । कोई व्यक्ति उम्र में आपसे बड़ा हो या छोटा, सभी को यथोचित सम्मान एवं स्नेह देना आपका विशेष गुण है । राष्ट्रप्रेम, पर्यावरण–संरक्षण, जीवों पर दया, असहायों के प्रति करुणा एवं परोपकार आपकी आदत बन चुके हैं । आप अनेक शैक्षिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध एवं सम्मानित हैं । समर्पण–भाव से संस्थाओं के हितार्थ सहयोग करना आपकी विशेषता है। विविध विषयों पर विभिन्न विधाओं में अब तक आपकी लगभग 34 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जो आपकी विद्वत्ता, कार्य कुशलता, साहित्यिक निष्ठा, समर्पण, श्रम एवं साहस की परिचायक हैं । चर्चित कृति 'पन्नाई यादों का कल्पतरु : भूटान' में संग्रहीत आपके द्वारा बनाये हुए अनेक रेखाचित्र आपकी कल्पनात्मक एवं कलात्मक अभिरुचि का बखान करते हैं । इस पुस्तक में



भूटान से सम्बन्धित अनेक छायाचित्र भी संकलित हैं । पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, शिलांग (मेघालय) द्वारा भी आपको 'अंतरराष्ट्रीय हिंदी–सेवा सम्मान – 2024' से अलंकृत किया गया है ।

विद्वान लेखिका की अभिनंदनीय सोच एवं उत्कृष्ट स्वभाव का अनुमान पाठक गण इस पुस्तक के ष्समर्पणष् से ही लगा सकते हैं जिसमें आपने लिखा है कि –

यह पुस्तक उन सभी को समर्पित है जिनको किसी पेड़ की खरोंच से पीड़ा होती है, जो किसी पक्षी को बंधक देख कर विह्वल हो जाते हैं, जिनको किसी जीव को सताने से भय लगता है, जो मछलियों को निजत्व में देखना चाहते हैं, उन लोगों को जो वृद्धों को खंडहर नहीं धरोहर मानते हैं और प्रकृति को प्रकृति में जीने देना चाहते हैं ।'

इस पुस्तक में बताया गया है कि भूटान को पेड़ों का मित्र कहा जाता है क्योंकि वहां किसी को पेड़ काटने का अधिकार नहीं है । भूटान को बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाने वाले संत रिंपोची की मूर्तियाँ हर स्थान पर मिलेंगीं । संत रिंपोची ने ही यहां के लोगों को शाकाहारी रहने के लिए प्रेरित किया , मांसाहार का विकल्प 'पान' बताया ।

शाकद्रुम का अर्थ होता है वह प्रशासक या राजा जो धर्म गुरु भी हो । राजा 'रेवांग' पक्षी का ताज पहने रहता है । राजा ही प्रजा के लिए पिता समान होता है । इस कृति में भूटान के राजा की विशेषताएँ और यहाँ की राजधानी थिंपू के विषय में भी विस्तार से बताया गया है । पर्यावरण–प्रेम भूटान वासियों की विशेषता है । विविध रंगों की पोशाक पहने और सिर पर चौड़ी टोपी लगाये यहाँ के लोग अत्यंत शांत, विनम्र एवं खुश मिजाज होते हैं । मातृ–शक्ति को वरीयता देने वाले इस देश का समाज अपनी पैतृक सम्पत्ति को लड़कियों के नाम लिखता है ।

इस पुस्तक में भूटान के प्रमुख महोत्सव, लामा नृत्य, राष्ट्रीय पोशाक, यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य, पर्वत, गुफाएँ, नदियाँ, बांध, गाँव, फसलें, फल–सब्जियाँ, राष्ट्रीय खेल तीरंदाजी, राष्ट्रीय पेड़, पशु और फूल आदि से संबंधित जानकारी भी विस्तार से दी गयी है ।

भूटान के पारो शहर की रोचक लोक कथा का उल्लेख भी लेखिका द्वारा कुशलता पूर्वक किया गया है । भूटान में किसी भी ध्वजा का विशेष महत्व है फिर वह

चाहे धार्मिक हो, राष्ट्रीय हो अथवा कोई अन्य ध्वजा हो । भूटान का 'टाइगर नेस्ट' अत्यंत पवित्र, धार्मिक एवं दुर्गम स्थान है जो बुद्ध अनुयायियों का श्रेष्ठ तीर्थ स्थल है, यहाँ लोग पूर्ण निष्ठा एवं समर्पित भावना से जाते हैं । भूटान की मूर्तियों एवं भवन–शिल्प कला से सम्बन्धित वर्णन भी इस पुस्तक में मिलता है । भूटान का सामाजिक परिवेश, डाक टिकट ,राजा – रानी की प्रेम कहानी और उनका सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं राजनीतिक आयोजनों में सहभागी होने का वर्णन भी कुशल लेखनी द्वारा किया गया है ।

इस पुस्तक में भूटान से सम्बन्धित चित्रों के साथ लेखिका द्वारा निर्मित रेखाचित्र एवं अनेक कविताओं को भी स्थान मिला है । सभी कविताएँ भूटान से ही सम्बंधित हैं । लेखिका डॉ. शुभदा पाण्डेय द्वारा की गयी भूटान की यात्राओं से सम्बन्धित 'चित्र गैलरी' भी पाठकों को इस पुस्तक में देखने को मिलेगी ।

निष्कर्ष रूप में कहा जाय तो इस पुस्तक की भाषा–शैली सुग्राह्य, सरल–सहज एवं लालित्यपूर्ण है । यह पुस्तक 'पन्नाई यादों का कल्पतरु : भूटान' एक पुस्तक मात्र न होकर प्रकृति की गोद में खेल रहे सुन्दर देश भूटान का सर्वांगीण सौंदर्य–दर्पण है जिसे जो भी पाठक पढ़ना प्रारम्भ करेगा तो निश्चित् रूप से पूरी पढ़े बिना नहीं रह सकेगा । मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक को अपना स्नेह और सम्मान देते हुए सुधी पाठक जन अपने हृदय में स्थान तो देंगे ही साथ ही भूटान की सुखद एवं मनोहारी यात्रा करने के लिए लालायित भी रहेंगे ।

इस श्रेष्ठ कृति की सर्जना के लिए यशस्वी लेखिका को अनंत मंगल कामनाएं , सादर स्नेहिल बधाई ।

शुभम् अस्तु !

बुद्ध पूर्णिमा

वि.संवत 2082

शुभेच्छु

**नरेंद्र शर्मा 'नरेंद्र'**

साहित्यकार

अलीगढ़ (उ.प्र.)



## जो किसी से भेद न करें, सबको एक आंख से देखें, वही गंगा है

पुस्तक का नाम – मेरी शिल्पकार हैं रचनाएँ ।

विधा– काव्य कृति (कविता संग्रह) लेखिका – डॉ. शुभदा पांडेय

प्रथम संस्करण – 2024

प्रकाशक – हिंदी श्री पब्लिकेशन भदोही, उत्तर प्रदेश।

मूल्य – रू. 250

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' से आशय यह है कि समाज की अच्छाइयों एवं बुराइयों का ज्ञान हमें लिपिबद्ध मौलिक साहित्यिक ग्रन्थों से ही पता चलता है। यह कार्य वरिष्ठ साहित्यकार एवं प्रख्यात शिक्षाविद तथा कवयित्री डॉ. शुभदा पांडेय जी अपनी लेखनी के माध्यम से सहज ही करती रहती हैं। उनकी सद्य: प्रकाशित पुस्तक 'मेरी शिल्पकार है रचनाएं' में कवयित्री ने समाज की विभिन्न पक्षों को बहुत ही सुंदर ढंग से कलमबद्ध करने का प्रयास किया है।

'बहने दो नदिया को नाव की तरह'। – (पेड़ों में )

'दोस्ती तो हम भी जान हथेली पर लिए करते हैं'। – (नीलकंठ)

'कबूतरों को नहीं भाते पेड़ उन्हें पुरानी हवेलियों के खंडहर अच्छा लगता है।' – (कबूतरों को)

'आज के समय में प्यार प्लेटफार्म पर रुकी ट्रेन के यात्रियों के समान है'– (प्लेटफार्म और प्यार)

'प्लेटफॉर्म भी कभी–कभी खोजता है अपना अतीत'।– (कोयले वाला इंजन)

'ओ मेरी जन्मभूमि! हर रोज तुम्हें खोजते हैं लोग, मेरे भीतर' ।– (कुशीनगर)

'घने नेपाली जंगलों में रहती है सीता – चिरैया'।

:मेरा विश्वास निजता में नहीं सार्वजनिकता में है'।– (समय मेरा भी आएगा)

'आदमी बड़प्पन में चौधियाया हुआ है।' – (गांवो उगती हैं फसलें)

पुस्तक की इस 'कविता संग्रह' में प्रकृति, पशु– पक्षी, अतीत, वर्तमान और आंखों देखी तथा कानों सुनी जैसी घटनाओं को अक्षरशः अपनी लेखनी का निवाला बनाने वाली कवयित्री ने समाज के संपूर्ण परिदृश्य को एक शिल्पी के रूप में रचनाओं के माध्यम से लोगों तक पहुंचाने का कठिन प्रयास किया है। जो बहुत ही सराहनीय एवं प्रशंसनीय है।

इस कविता संग्रह की भाषा ओजस्वी,सारगर्भित एवं बोधगम्य है।

ऐसे ओजस्वी, जुझारू, कर्मठ एवं लगनशील तथा यशस्वी रचनाकारो को पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।जिनके बल पर ही भारत के यशस्वी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी एक नए एवं विकसित भारत की कल्पना करते हुए भारत को विश्व गुरु बनाने की सोच रहे हैं। बेशक, आज भी ऐसे ममत्व एवं करुणा की प्रतिमूर्ति मां सदृश कवयित्री के रूप में विवेकानंद की पीढ़िया मौजूद हैं। ऐसी कवयित्री को मेरा कोटि–कोटि प्रणाम एवं हार्दिक शुभकामनाएं।

**डॉ. अनिल कुमार पांडेय**
(असिस्टेंट प्रोफेसर)
शिक्षा संकाय विभाग
प्रयागराज